॥ श्रीः ॥

अथ उपनयनपद्धतिः ।

(भपाटीकासमेता.)



प्रथमप्रकरणम् १.

ॐस्वस्ति ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ विप्राणां व्रतवन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे वर्षेवाप्यथ पंचमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे ॥ वैश्यानां पुनरष्टमेप्यथ पुनः स्याद्वादशे वत्सरे कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ॥ १ ॥

ॐनमो गणेशाय ॥ स्वस्ति श्रीः ॥ श्रीगुरवे नमः॥ हेरम्बं शारदां शम्भुं रामं सीतासमन्वितम् । प्रणम्य भक्त्या स्वगुरुं कुर्वे टीकां मनोरमाम् ॥ १ ॥ नवग्रहेन्द्रवामनं पितृव्यमाधवं तथा । स्वपूर्ववंशसंभवान्मुहुर्मुहुः प्रणौम्यहम् ॥ २ ॥ कृताकृतं हि यन्मया अशुद्धितोत्सतोद्भवम्। असंस्कृतं ह्यनक्षरं महाशयैश्च सोध्यताम् ॥ ३ ॥ कर्पूरस्य स्थले रम्ये उद्यानादिसुशोभिते । विष्णुदत्तेन विदुषा कृता टीका समासतः ॥४॥ व्याख्याकृतोपनयनपद्धतेर्वै विलोक्यताम् । वक्ष्यसिष्यन्ति दूष्यन्ति सन्तोऽसन्तश्च भूतले ॥ ५ ॥ १ ॥

" आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् " इत्यादि शास्त्रप्रामाण्य और शिष्टाचारफलदर्शन ' श्रेयस्कामो मंगलमाचरेत् ' इति श्रुतिबोधितनमस्कारात्मकमंगलको विधानकर प्रथम वेदाध्ययनविषयकफल निरूपण करतेहैं (यथा याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय प्रथम स्मृति ४० से आदिले ४८ पर्यन्त) यथा–

"यज्ञानां तपसां चैव शुभानाञ्चैव कर्म्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥ ४० ॥
मधुना पयसा चैव सदेवाँस्तर्पयेद्विजः ।
पितॄन्मधुघृताभ्याञ्च ऋचोधीते च योऽन्वहम् ४१॥
यजूँषि शक्तितोऽधीते योऽन्वहं स घृताऽमृतैः ।
प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितॄँस्तथा ॥ ४२ ॥
सतुसोमघृतैर्देवाँस्तर्पयेद्योन्वहं पठेत् ।
सामानि तृप्तिं कुर्याच्च पितॄणां मधुसर्पिषा ॥ ४३॥
मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वाङ्गिरसः पठन् ।
पितॄँश्चमधुसर्पिर्भ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः ॥ ४४ ॥
वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः ।
इतिहासाँस्तथा विद्याः शक्त्याधीते हि योऽन्वहम् ॥
मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम् ।
करोति तृप्तिं कुर्याच्च पितॄणां मधुसर्पिषा ॥ ४६ ॥
ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः ।
यं यं क्रतुमधीतेऽसौ तस्यतस्याप्नुयात्फलम्॥४७॥

त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते ।
तपसो यत्परस्येह नित्यं स्वाध्यायवान्द्विजः४८"

अर्थात् जो पुरुष भलीप्रकार ऋग्वेद यजुर्वेद साम-वेद अथर्वणवेद वाक् अनुवाक् पुराण नाराशंसी गाथिका इतिहास रामायण भारतादि तथा और विद्या शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छंद ज्योतिष धर्मशास्त्र दर्शन आदि साथ वेदोंके व्यस्त वा समस्त पढतेहैं प्रतिदिन अभ्यास करतेहैं वे पुरुष मधु (शहद) पायस दुग्ध अमृत घृत आदि अत्युत्कृष्टपदार्थोंसे देवताओंको और मधु घृत तिल आदिवृष्यपदार्थोंसे पितरोंको तृप्त करतेहैं वे पितर और देवतागण तृप्त भये इनको पुत्र पौत्र धन यश सुख आदि सर्व कामनासे तृप्त करतेहैं और जिस यज्ञको जो पुरुष सार्थक सुस्वर पढताहै वह उस यज्ञके फलको प्राप्त होताहै. इत्यादि महाफलदाता वेदाध्ययन फलको वही पुरुष प्राप्त होताहै कि, जिसका शुद्ध यथाकाल वक्ष्य-माणमें चंद्रतारादि शुद्धिमें यथावत् उपनयनसंस्कार किया हो और उपनयनके अनंतर देव पितृ ऋषि य-ज्ञादिकर्मोंमें अधिकारी होताहै प्रमाण (याज्ञ० अध्याय १प्रथम स्मृति१५) यथा- (उपनीय गुरुः शिष्यं महा-व्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्ष-

येत्) अर्थात् शिष्यको यज्ञोपवीत धारण करवाय गुरु महाव्याहृतिपूर्वक शिष्यको वेद पढावे और शौच आचारकी शिक्षा करे-इत्यादि स्मृति प्रमाणोंसे उपनीत पुरुषही वेद पढ़नेका अधिकारी है॥ अन्यथा उपनयन रहितको वेदका अधिकार नहीं, यथा-"स्त्री शूद्रोऽनुपनीतश्च वेदमंत्रान्विवर्जयेत्"। अर्थ-स्त्री शूद्र और जिसका उपनयनसंस्कार न हो यह तीन वेदोंको न पठन करें और विना उपनयनके द्विजत्व ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको नहीं होता अर्थात् उपनयनसंस्कारके अनंतर इनकी द्विजसंज्ञा होतीहै इसमें प्रमाण (याज्ञव० स्मृ०अ०१स्मृति३९) यथा-"मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबंधनात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः"॥ इस लिये उपनयनसंस्कारसे अधिकृत होनेसे और उपनयनमें मुख्यता कालको होनेसे प्रथम कालनिरूपण करते हैं तद्यथा [विप्राणां व्रतबन्धनमिति] गर्भसे वा जन्मसे अष्टमवर्षमें ब्राह्मणोंको व्रतबंधन अर्थात् यज्ञोपवीतका धारण करना चाहिये अथवा पंचम वर्षमें । इसीप्रकार क्षत्रियोंको षष्ठ ६ वा एकादशवर्षमें और वैश्योंको अष्टम ८ और द्वादश१२ वर्षमें यज्ञोपवीतधरण कहाहै अथवा कालातिक्रम होनेसे षोडश१६ वर्ष ब्राह्मणको और द्वाविंशति २२

वर्ष क्षत्रियको और चतुर्विंशति २४ वर्षमें वैश्यको उप नयनमें गौणकाल कहाहै ॥ अर्थात् उपनयनसंस्कारमें नित्य काम्य गौण भेदसे तीन प्रकारका काल लिखाहै जिसमें ब्राह्मणको गर्भ वा जन्मसे अष्टम ८ क्षत्रियको एकादश ११ वैश्यको द्वादश १२ वर्षमें नित्यकाल कहाहै, इसीप्रकार ब्राह्मणको पंचम क्षत्रियको षष्ठ वैश्यको अष्टम यह काम्य काल है और ब्राह्मणको षोडश १६ क्षत्रियको द्वाविंशति २२ वैश्यको चतुर्विंशति २४ वर्षमें उपनयन गौणकाल कहाहै ॥ इनवर्षोंके ऊपर गायत्रीका अधिकारी नहीं होता ॥ प्रमाण (याज्ञव०स्मृ०अध्याय१ स्मृति१४)यथा-"गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्" यथाकुलम् अर्थात् काम्यकाल पंचम षष्ठ अष्टम वर्षमें इसलिये फल बोधित होनेसे पैठीनसी मुनिजी काम्यकाल विधान करतेहैं (गर्भपंचमेऽब्दे ब्राह्मणमुपनयेदिति गर्भषष्ठेऽष्टमे च क्षत्रियविशोर्ज्ञेयम् गर्भादिसंख्या वर्णानामिति) मनुजी भी लिखतेहैं-"ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे" और गौण काल भी याज्ञवल्क्यादिधर्मशास्त्रोक्तलिखतेहैं ॥ प्रमाण (याज्ञ० अ०१ श्लोक ३७।३८) यथा-"आषोडशादाद्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्। ब्रह्मक्षत्रविशां काल

औपनायनिकः परः॥ अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः । साविन्नीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः' मनुजीभी लिखतेहैं-"आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । आद्वाविंशाद्ब्रह्मबंधोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यपि च गर्हिताः" इति ॥ और पारस्करजीभी लिखतेहैं (गृह्यसू० कांड २) "अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वैकादशवर्ष ँ राजन्यं द्वादशवर्षं वैश्यं यथामंगलं वा सर्वेषाम्-आषोडशाद्वर्षाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवति । आद्वाविंशाद्राजन्यस्याचतुर्वि ँ शाद्वैश्यस्यातऽऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवंति नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्नयाजयेयुर्नचैभिर्व्यवहरेयुः कालातिक्रमे नियतवत् त्रिपूरुषं पतितसावित्रीकाणामपत्ये संस्कारो नाध्यापनं च तेषा ँ संस्कारेप्सुर्व्रात्यस्तोमेष्ट्वा काममधीयीरन् व्यवहार्या भवंतीति वचनात्" ॥

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वा रौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेन्दु दिने व्रतं सत् । द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे ॥ २ ॥

क्षिप्रसंज्ञकनक्षत्र अर्थात् हस्त अश्विनी पुष्य अभिजित्।

ध्रुवसंज्ञकनक्षत्र अर्थात् उत्तरफाल्गुनी उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा रोहिणी। आश्लेषा। चरनक्षत्र- स्वाति पुनर्वसु श्रवण धनिष्ठा शतभिषा। मूल।मृदुनक्षत्र-मृग-शिर रेवती चित्रा अनुराधा। पूर्वाभाद्रपदा पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा आर्द्रा इन नक्षत्रोंमें। रवि बुध बृहस्पति शुक्र चन्द्र इनदिनोंमें। द्वितीया तृतीया पंचमी एकादशी द्वादशी दशमी इन तिथियोंमें कृष्णपक्षकी पंचमीपर्यंत ये.सब उपनयनसंस्कारमें नक्षत्र तिथि दिन पक्ष शुभहैं और अपराह्णकाल अशुभ है अर्थात् पूर्वमध्यभाग दिन के शुभ होते हैं॥ २॥

कवीज्यचन्द्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः।
व्ययेऽब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः॥३॥

उपनयनमें लग्नशुद्धि लिखतेहैं। उपनयनलग्नसे षष्ठस्थान ६ और अष्टमस्थान ८ में कवि (शुक्र) इज्य (बृहस्पति) चन्द्रमा लग्नेश ये अधम अर्थात् अशुभ होते हैं। इसीप्रकार चन्द्रमा, शुक्र द्वादशस्थानमें अशुभ होते हैं लग्न और अष्टम पंचम स्थानोंमें पापी ग्रह अशुभ होते हैं। यथा बृहज्जातकमें 'क्षीणेन्दुर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः' ॥ अर्थात् क्षीणचन्द्रमा सूर्य मंगल शनैश्चर यह पापी ग्रह होते हैं यदि इनसे युक्त बुध होय तो वह भी पापी होताहै॥३॥

व्रतबन्धेऽष्टषड्रिष्फवर्जिताः शोभनाः शुभाः ।
त्रिषडायेखलाः कर्कगोस्थःपूर्णोविधुस्तनौ ॥४॥

व्रतबंधमें षष्ठ ६ अष्टम ८ द्वादश १२ स्थानसे रहित शुभग्रह हो अर्थात् प्रथम द्वितीय चतुर्थ पंचम सप्तम नवम दशम इनमें शुभग्रह होवें और तीसरे पष्ठस्थान एकादशस्थानमें पापी ग्रह शुभ होते हैं और पूर्णचंद्रमा कर्क वृष राशिका हो लग्नमें स्थित हो तो अति शुभ है ॥ ४ ॥

विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ राजन्यानामोषधीशो विशां च ॥ शूद्राणां ज्ञश्चान्त्यजानां शनिः स्याच्छाखेशाः स्युर्जीवशुक्रारसौम्याः ॥ ५ ॥

चतुर्वर्णोंके शाखेश क्रमसे ये होते हैं शुक्र और बृहस्पति ब्राह्मणो की शाखाके स्वामी हैं। मंगल सूर्य क्षत्रियोंके शाखेश हैं, वैश्योंका चंद्रमा शाखेश है और शूद्रोंका बुध शाखेश है अन्त्यज अर्थात् चांडाल शबर निषादादिकोंका शनैश्चर शाखेश होताहै तथा बृहस्पति ऋग्वेदका स्वामी शुक्र यजुर्वेदका और मंगल सामवेदका तथा बुध अथर्वण वेदका स्वामीहै ॥ ५ ॥

शाखेशवारतनुवीर्यमतीवशस्तं शाखेश-

सूर्यशशिजीवबले व्रतं सत् । जीवे भृगौ रिपुगृहे विजिते च नीचे स्याद्वेदशास्त्रविधिना रहितो व्रतेन ॥ ६ ॥

शाखेश अर्थात् अपनी २ शाखाका स्वामी उसका (वार दिन) और शाखेशका लग्न और बलयुक्त शाखेश . यह व्रतबंधन उपनयनमें अतिश्रेष्ठ होते हैं ॥ और शाखेश सूर्य चंद्रमा बृहस्पति यह बलयुक्त उपनयनमें श्रेष्ठ होते हैं यदि शुक्र बृहस्पति शत्रुस्थानमेंहों अथवा पराजित वा नीच हों उसकालमें उपनीतपुरुष वेदशास्त्रविधिसे रहित होता है ॥ ग्रहोंका उच्च नीच बृहज्जातकोक्त लिखते हैं ॥ यथा-'अजवृषभमृगांगनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुंगाः । दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः' अर्थात् मेषके१०अंश सूर्य पूर्णउच्च और तुलाके१० अंश पूर्ण नीच होताहै. इसप्रकार वृषके३अंश चंद्रमाका उच्च वृश्चिकके३अंश पूर्ण नीच होताहै।और मंगल मकरके२८ अंश उच्च कर्कके २८ अंश नीच । बुध कन्याके १५। अंश उच्च और मीनके१५। अंश नीच । बृहस्पति कर्कके५ अंश उच्च और मकरके ५ अंश नीच । शुक्र मीनके २७ अंश उच्च और कन्याके २७ अंश नीच । शनैश्वर

तुलाके २० अंश उच्च और मेषके २० अंश पूर्ण नीच होता है ॥ ६ ॥

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ॥
आद्यगर्भेपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ॥७॥

जन्मनक्षत्र जन्ममास जन्मलग्न जन्मतिथि ब्राह्मणोंका आद्यगर्भ अर्थात् ज्येष्ठ बालकका उपनयन करनेसे उपनीत अधिक विद्यासंपन्न होता है और इन तिथी वार नक्षत्रादिमें क्षत्रिय और वैश्यके प्रथमगर्भको उपनयन श्रेष्ठ नहीं अर्थात् द्वितीय तृतीय पुत्रादिकों काजन्ममासादिमें उपनयन संस्कार अति श्रेष्ठ है ॥ ७॥

बटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः ।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः ॥ ८ ॥

बृहस्पतिजीकी शुद्धि कहतेहैं कि, बटु (बालक) कन्याकी जन्मराशि अर्थात् जन्मसमय जिस राशिमें चन्द्रमा स्थित हो उससे नवम पंचम द्वितीय एकादश सप्तम स्थानमें स्थित बृहस्पति श्रेष्ठ होता है और षष्ठस्थान तथा तृतीयस्थान दशम लग्नमें पूजनसे बृहस्पति शुभ है अन्यत्र अर्थात् चतुर्थ अष्टम द्वादश स्थानमें निंद्य अर्थात् बृहस्पति अशुभ होता है ॥ ८॥

स्वोच्चे स्वभे स्वमित्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः॥रिष्फाष्टतुर्यगोपीष्टो नीचारिस्थः शुभोप्यसत् ॥ ९ ॥

स्वोच्च अर्थात् पूर्वोक्त अपने उच्चमें स्वभे अर्थात् अपने राशिमें मित्रकी राशिमें अर्थात् सूर्य चंद्र मंगलकी राशिमें हो वा अपने नवमांशमें हो अथवा वर्गोत्तम स्थानमें स्थित होकर यदि द्वादश अष्टम चतुर्थ स्थान में स्थित गुरुभी होय तोभी श्रेष्ठ होताहै और नीच वा शत्रुकी राशिमें स्थित हुआ यदि शुभ स्थानमेंभी होय तो वहभी अशुभ होताहै ॥ राशीश बृहज्जातकोक्त लिखतेहैं ॥ 'क्षितिजसितज्ञचंद्ररविसौम्यसिताव-निजाः । सुरगुरुमंदसौरिगुरवश्च गृहांशकपाः' ॥ अर्थात् मेष और वृश्चिकका मंगल स्वामी । वृष और तुलाका शुक्र स्वामी।मिथुन और कन्याका बुध स्वा-मी । कर्कका चंद्रमा स्वामी । सिंहका सूर्य स्वामी । धन और मीनका बृहस्पति स्वामी। मकर और कुंभका शनैश्चर स्वामी होताहै ॥ वर्गोत्तम चरराशिका प्रथम नवमांश होताहै । प्रमाण बृह० 'वर्गोत्तमाश्चरगृहा-दिषु पूर्वमध्यपर्यंतगाश्शुभफला नवभागसंज्ञाः' ॥ ९ ॥

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके ॥ प्राक्संध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबंधो गलग्रहे॥१०॥

प्रथम त्रिभागरहित कृष्णपक्ष और प्रदोप अनध्याय जो आगेकहेहैं उनमें और शनैश्चर वार तथा रात्रि कालमें अपराह्णकालमें प्रातःकालकी संध्यामें यदि मेघशब्दहो उसमें और गलग्रह गततिथि वा त्रयोदशी चतुर्दशी आमावस्या प्रतिपत् और सप्तमी अष्टमी नवमी और चतुर्थी यह तिथियोंको गलग्रह कहतेहैं । प्रमाण गुरुः-"त्रयोदश्यादि चत्वारि सप्तम्यादिदिनत्रयम् । चतुर्थीचैकतः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः" । यदि इन पूर्वोक्त कृष्णपक्षादिमें उपनयन हुआ हो मधुमासविना तो फिर संस्कारके योग्य होताहै । अन्यथा गलग्रहदोषमें स्वल्पायु होताहै ॥ प्रमाण दैवज्ञमनोहरका-"प्रदोषे निश्यनध्याये मंदे कृष्णे गलग्रहे । मधुं विनोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हति । गलग्रहे प्रदोषे च स्वल्पायुरुपजायते" । इति ॥ १० ॥

क्रूरो जडो भवेत्पापः पटुः षट्कर्मकृद्वटुः ॥
यज्ञार्थभाक्तथामूर्खोऽर्क्याद्यंशेतनौक्रमात् ॥

अंशफलको यथाक्रमसे लिखतेहैं । यदि लग्नका नवमांश सूर्यका होय तो क्रूरस्वभावयुक्त होताहै । इसी प्रकार चंद्रमा होय तो जड । मंगल होय तो पापशील। बुध होय तो पटु अर्थात् चतुर।बृहस्पति होय तो षट् कर्मकृत् अर्थात् यजन याजन पठन पाठन दान प्रतिग्रह

इन कर्मोंके करनेवाला होताहै।यदि शुक्र होय तो यज्ञा-र्थभाक् अर्थात् यज्ञार्थके भोगनेवाला होताहै । यदि शनैश्चरका नवमांश होय तो मूर्ख होताहै ॥ ११ ॥

विद्यानिरतः शुभराशिलवे पापांशगते हि दरिद्रतरः ॥ चन्द्रे स्वलवे बहुदुःख-युतः कर्णादितिभे धनवान्स्वलवे॥१२॥

जिस किसी राशिमें चंद्रमा स्थितहो उसमें यदि शुभग्रहराशिके नवमांशमें हो तो विद्यासंपन्न पुरुष होताहै । यदि पापग्रहके नवांशमें हो तो अतिशय निर्धन होताहै। यदि कर्क राशिके नवमांशमें हो तो बहुतदुःखयुक्त होताहै । यदि श्रवण और पुनर्वसु नक्षत्रमें उपनयनहो अपने नवमांशमें चंद्रमा होय तो धनवान् होताहै ॥ १२ ॥

राजसेवी वैश्यवृत्तिश्शस्त्रवृत्तिश्च पाठकः ॥ प्राज्ञोर्थवान्म्लेच्छसेवी केन्द्रे सूर्यादिखेचरैः१३

अथ केंद्रोंमें स्थित सूर्यादि नवग्रहका फल कहतेहैं यदि सूर्य केंद्रस्थान ॥ १ ॥ ४ ॥ ७ ॥ १० ॥ इन स्थानोंमें स्थित होय तो राजाका सेवक होताहै। चंद्रमा होय तो वैश्यवृत्ति व्यापारयुक्त होता है। मंगल होय तो शस्त्रधारणकर आजीवन करताहै। बुध पठन पाठन

वृत्ति करता है।बृहस्पति बुद्धिमान कर्ता है । शुक्र धनी, शैनश्चर म्लेच्छ सेवक क्रमसे करता है ॥ १३ ॥

शुक्रे जीवे तथा चंद्रे सूर्यभौमार्किसंयुते ॥
निर्गुणः क्रूरचेष्टः स्यान्निर्घृणःसद्युते पटुः १४

शुक्र बृहस्पति चन्द्रमा इन तीनोंमें यदि एक साथभी सूर्य संयुक्त होय तो उपनीतबालक निर्गुण होताहै । यदि मंगलयुक्त हो तो क्रूरस्वभाव होताहै । यदि इनके साथ शनैश्चर युक्त होय तो लज्जा और दयाहीन होताहै । यदि चंद्र शुक्र बृहस्पतिके साथ शुभग्रह युक्त होय तो सर्वविद्यामें निपुण उपनीत बालक होताहै ॥ १४ ॥

विधौ सितांशगे सिते त्रिकोणगे तनौ गुरौ ॥
समस्तवेदविद्व्रती यमांशगेऽतिनिर्घृणः ॥ १५॥

चंद्रमा शुक्रके नवमांशमें स्थित होय और शुक्र उपनयनलग्नसे नवम पंचम स्थानमें स्थितहो बृहस्पति लग्नमें स्थितहोय तो इसमें यदि उपनयनसंस्कार होय तो संपूर्णवेदोंके जानने वाला बालक होताहै। यदि शनैश्चरके नवमांशमें चंद्रमा होय लग्नमें गुरु और शुक्र नवम पंचम होय तो अत्यंत निर्घृण अर्थात् कृतघ्न होताहै ॥ १५ ॥

शुचिशुक्रपौषतपसां दिगश्विरुद्रार्कसंख्य-

सिततिथयः ॥ भूतादित्रितयाष्टमी संक्रमणं च व्रतेष्वनध्यायाः ॥ १६ ॥

उपनयनसंस्कारमें अनध्याय लिखतेहैं आषाढ शुक्ल दशमी। ज्येष्ठशुक्लद्वितीया। पौषशुक्लएकादशी। माघ शुक्लद्वादशी। और चतुर्दशी। पूर्णिमा अमावस्या प्रतिपदा अष्टमी संक्रांति चकारसे मन्वादितिथियोंमें भी अनध्याय होता है ॥ १६ ॥

अर्कतर्कत्रितिथिषु प्रदोषः स्यात्तदग्रिमैः ॥ रात्र्यर्धसार्धप्रहरयाममध्यस्थितैः क्रमात् १७।

प्रदोषकहतेहैं, जैसे द्वादशीकी अर्धरात्रिमें त्रयोदशी होय तो प्रदोष होताहै॥ षष्ठीके डेढप्रहर रात्रिके मध्यमें सप्तमीका प्रवेश होय तो प्रदोष होता है ॥ तृतीयाके प्रहर रात्रिके मध्यमें चतुर्थीका प्रवेश होय तो प्रदोष होताहै ॥ १७ ॥

प्राग्ब्रह्मौदनपाकाद्व्रतबन्धानंतरं यदि चेत्॥ उत्पाताऽनध्ययनोत्पत्तावपि शान्तिपूर्वकं तत्स्यात् ॥ १८ ॥

ब्राह्मण भिक्षितभोजनके पूर्व व्रतबंधनके अनन्तर उत्पात वा अनध्यायोंकी उत्पत्ति होय तो शांतिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करे॥ १८॥ इसकी शांति लिखते हैं ॥

"स्वस्तिवाचनपूर्वं तु हवनं कारयेद्बुधः ॥
प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यशांतिर्यतो भवेत् ॥
सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेद्विद्यासमृद्धये ॥
गायत्रीं युञ्जतो मंत्रः प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥
धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् ॥
शिलां होमविधेः पश्चात् स्थापयेत्तत्र संसदि ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत्" ॥

वेदक्रमाच्छशिशिवाहिकरत्रिमूलपूर्वासु पौष्णकरमैत्रमृगादितीज्ये॥ ध्रौवेषु चाश्विवसुपुष्यकरोत्तरेशकर्णे मृगांत्यलघुमैत्रधनादितौ सत्॥ १९॥

वेदक्रम अर्थात् मृगशिर आर्द्रा आश्लेषा हस्त चित्रा स्वाति मूल पूर्वात्रय यह नक्षत्र ऋग्वेदियोंको श्रेष्ठहैं रेवती हस्त अनुराधा मृगशिर पुनर्वसु पुष्य उत्तरा त्रय रोहिणी यह नक्षत्र यजुर्वेदियोंको श्रेष्ठ होते हैं॥अश्विनी धनिष्ठा पुष्य हस्त उत्तरा त्रय आर्द्रा श्रवण यह नक्षत्र सामवेदियोंको श्रेष्ठ होते हैं ॥ मृगशिर रेवती हस्त अश्विनी पुष्य अभिजित् अनुराधा धनिष्ठा यह नक्षत्र अथर्वणवेदियोंको श्रेष्ठ होतेहैं ॥ १९ ॥

नांदीश्राद्धोत्तरं मातुः पुष्पे लग्नांतरं नहि ॥

शांत्याचौलं व्रतं पाणिग्रहः कार्योऽन्यथा न सत् ॥ २० ॥

नांदीमुखश्राद्धके उपरांत चूडाकर्म और उपनयन और विवाहलग्नके अंतर मध्यमें यदि माताको पुष्प अर्थात् ऋतु आजावे तो शांतिपूर्वक चूडाकर्म उपनयन पाणिग्रहण श्रेष्ठ होता है ॥ अन्यथा श्रेष्ठ नहीं ॥ २० ॥

विचैत्रव्रतमासादौ विभौमास्ते विभूमिजे ॥ छुरिकाबंधनं शस्तं नृपाणां प्राग्विवाहतः ॥ २१ ॥

नृप क्षत्रियोंको विवाहके पूर्व छुरिकाबंधन चैत्रमास रहित यज्ञोपवीतमुहूर्तके जो नक्षत्र तिथि मासमें श्रेष्ठ होताहै परंतु भौम (मंगल) यह अस्त न होय और मंगलवार न होवे तो शुभ है ॥ २१ ॥

केशांतं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम् ॥ व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥ २२ ॥

इति श्रीयज्ञोपवीतमुहूर्तं सम्पूर्णम् ॥

केशान्त अर्थात् गोदान षोडश१६वर्षमें चूडाकर्मका जो नक्षत्र दिन उसमें शुभ होताहै ॥ प्रमाण (याज्ञवल्क्यस्मृतिका अ० १) यथा-'केशान्तश्चैव षोडशे' ॥ और यज्ञोपवीतके नक्षत्रदिनमें समावर्तनसंस्कारकहाहै।

श्रीहरिः ॥ २२ ॥ इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासी गौतमगोत्र (शौरि) अन्वयालंकृत दैवज्ञ दुनिचंद्रात्मज-श्रीपण्डितविष्णुदत्त वैदिककृत उपनयनमुहूर्तटीका समाप्तिमगात् । सा च शुभावहास्यात्कुलदेव्याःप्रसादात्॥श्रीरामचंद्रः प्रसन्नोऽस्तु ॥ श्रीः ॥

(समाप्तं चेदं प्रथमं प्रकरणम्.)



अथ उपनयनसामग्री ।

रोली मोली केशर बतासे आटा चावल पुष्प धूप पुष्पमाला दीप ताम्बूल७,यज्ञोपवीत२, प्रणीतापात्र २, प्रोक्षणीपात्र २, कांस्यपात्र २, छायापात्र१, सुवर्ण १, कुशा स्रुवा गोमय एरने पलाशसमिधा पूर्णपात्र २, उपर्णे ९, धोतियाँ ९, कोपीन ९, मृगचर्म १, पलाशदंड १, गूलरशाखा मेखला मुंजकी सुहालियां सेर १, पुरवा ८,लोटिया (कलश)८, नारिकेल२, खडावा जोडा १, पट्टी चंगेर लाठी गुथली कंसार २॥ सेर घृत तिलदधि सुपारी११आम्रपत्र वृक्षादिपत्र७अंजन दर्पण वस्त्र मोती उपानह बढना श्वेतदूर्वा दोने १०, अबीरश्वेत ६, ब्राह्मणभोजन दक्षिणा यथायोग्य पंचरंग ॥ २९ ॥

इति उपनयनसामग्रीसमाप्ता ।

॥ ॐस्वस्ति॥श्रीगणेशाय नमः॥अथोप नयनम्॥श्रीः॥ तत्र शुद्धसमये रविगुरु- चंद्रतारादिशुद्धौ जन्मतो गर्भाष्टमेऽब्दे वानुकूल्ये षोडशसंवत्सराभ्यंतरे ब्रह्म- वर्चसकामस्य पंचमेप्युदगयनआपूर्य- माणपक्षेनध्यायषष्ठीरिक्ताद्यतिरिक्ति- थौ। रविगुरुशुक्रान्यतमवारेमध्याह्नाद- र्वाक्। कुमारपित्राभ्युदयिकेकृतेतदभा वेआचार्येणैव कृते ब्राह्मणान्माणवकं च भोजयित्वा सशिखकृतक्षौरंस्नानानंतरं यथाशक्त्यालंकृत्वाबहिःशालायां तुष- केशशर्करादिशून्यपरिष्कृतभूमौ आ- चार्योऽग्निस्थापनं कुर्यात् ॥

ॐस्वस्ति ॥श्रीगणेशाय नमः॥ नत्वाविघ्नपगौरीं कु- मारमारशासनं देवम् । सानुजसीतासहितं रामं नयना- भिरामं हि ॥ कर्पूरस्थलनिवासिना विष्णुदत्तेन धी मता ॥ उपनयनपद्धतेर्व्याख्या लोकोपकृतये कृता यच्चशुद्धमशुद्धमज्ञानाच्च कृतं मया ॥ विद्वद्भिः क्ष म्यतां सर्वं बालत्वादयमञ्जलि ॥ श्रीमान् महामत्तक

महा सामन्ताधिपति श्रीगणेशसूनु श्रीरामदत्तजी अथ शब्दसे मंगल आचरण करते हैं ॥ प्रमाण यथा अथ मंगलानंतरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्याधिकारप्रतिज्ञासमुच्चयेषु इतितत्त्वबोधिन्याम् ॥ अथ इसके अनंतर शुद्ध काल गुरुचंद्र तारादिशुद्धिमें जन्मसे वा गर्भसे अष्टम वर्षमें अनुकूलकाल षोडशवर्षके अंतर और ब्रह्मवर्चस इच्छावान्को पंचमवर्षमें उत्तरायण शुक्लपक्षमें अनध्याय षष्ठी चतुर्थी चतुर्दशी नवमी इनसे विना और तिथियोंमें रवि शुक्र बृहस्पति वारमें मध्याह्नकालसे पूर्व बालकका पिता उसके अभाव वा असमर्थ वा दूरस्थ होनेसे आचार्य आभ्युदयिक नांदीमुखश्राद्ध करे॥तदनंतर ब्राह्मणको और माणवकको भोजन करवा साथशिखाके क्षौरकर स्नानके अनंतर यथाशक्ति अलंकार कर बाहिर शालामें तुष (तोह) केश (रोम) शर्करा (रेतकणके) इनसे रहित हस्तमात्र परिमित भूमिमें आचार्य अग्निस्थापन करे ॥

---

१ कालकी शुद्धि चंद्रताराकी अनुकूलता यह पूर्व प्रकरणमे अति श्रेष्ठ लिखेहैं । २ अष्टम वर्षमें जो उपनयन लिखाहै वह ब्राह्मणके वास्ते लिखाहै उसी प्रकार एकादशवर्ष क्षत्रियको द्वादशवर्ष वैश्यके लिये यह सब पूर्व लिखाहै ॥ ३ अनध्यायभी पूर्वप्रकरणमें लिखे है । ४ भोजन ब्राह्मणोंको और बालकको भोजन करवायकर । ५ साथशिखा के क्षौर करना वेदविहित श्रेष्ठमार्ग है अन्य गौणहै ।

तत्र हस्तमात्रपरिमितचतुरस्रभूमिंकुश-
करणकसमूहनानंतरं गोमयोदकेनोप-
लिप्य। स्रुवमूलेनप्रागग्रप्रादेशमात्रमुत्त-
रोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य॥ उल्लेखनक्र-
मेणाऽनामिकांगुष्ठाभ्यांमृदमुद्धृत्यजले-
नाभ्युक्ष्य । नवीनकांस्यपात्रेणाग्निमा-
नीय स्वाभिमुखं निदध्यात्॥ततःकुमा-
रमाचार्यः शिष्यद्वाराग्नेःपश्चाद्दक्षिणपा-
र्श्वेऽवस्थापयति । ततः कुमारं बद्धाञ्ज
लिं संबोधयति॥ओंब्रह्मचर्यमागामिति-
ब्रूहि ॥ इति प्रैपानंतरम् ॥

तिसमें हस्तमात्र परिमित चतुरस्र (चतुकरी) भूमि को कुशोदकेसे समूहनकर गोमय (गोबर) युक्त जलसे लेपन कर स्रुवके मूलभागसे पूर्वाग्र प्रादेशमात्र अर्थात् अंगुष्ट अनामिकामात्र विस्तृतउत्तरोत्तरक्रम अर्थात् उत्तरक्रमसे तीनवार उल्लेखन कर उसी प्रकार अना-मिका अंगुष्टसे मृत्तिकाको उद्धरण करे अर्थात् ऊर्द्धको फेंके तदनंतर जलसे अभ्युक्षण अर्थात् सिंचन कर नवीन (नूतन) कांस्यके पात्रमें अग्नि मँगवाय अपनेसे पूर्वकी तरफ रक्खे । तिसके अनंतर

कुमारको शिष्यके द्वारा अग्निके पीछे अपनेसे दक्षिण पार्श्वकी ओर बैठावे । तदनंतर. बद्धाञ्जलि अर्थात् हाथ जोडकर जो आगे स्थितहै उसको गुरु संबोधित करता है ॥ (ॐब्रह्मचर्यमागाम्) यह तुम कहो अर्थात् ब्रह्मचर्यको मैं प्राप्त हुआ इस प्रैषके अनन्तर ॥

ब्रह्मचर्यमागामिति कुमार आह॥ततः ॐब्रह्मचार्यसानीति ब्रूहीत्याचार्येणोक्ते ॐ ब्रह्मचार्यसानीति कुमार आह ॥ अथमाणवकमाचार्योवासः परिधापय-ति । तत्र आचार्यपठनीयो मंत्रः ॥ ॐ येनेंद्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतं तेनत्वापरिदधाम्यायुषेदीर्घायुत्वाय ब-लाय वर्चसे॥ततोमाणवकस्यद्विराचम-नम् । अथ माणवकस्य वेष्टनत्रयेणत-त्प्रवरग्रथितां मेखलामाचार्यो बध्नाति। तत्र माणवकपठनीयोमंत्रः ।

(ब्रह्मचर्यमागाम्) यह बालक कहे ॥ तदनंतर ब्रह्मचारी असानि यह अचार्यवाक्यके अनंतर ॐब्रह्मचार्य-सानि यह बालक कहे ॥ इसके अनंतर गुरु कुमारको

वस्त्र पहनाता है॥ ॐयेनेंद्राय बृहस्पति इस मंत्रसे [मंत्रार्थ जैसे-] देवताओंका गुरु बृहस्पति जिस प्रकार यह वस्त्र अमृत अर्थात् हत छिद्र दग्धता जीर्णतादि दोप रहित यह वस्त्र पहनाता भया तिस प्रकार आयु चिरकाल जीवन और बल सामर्थ्य तेज कांतिके लिये हम तुमारेको पहनाते हैं ॥ वस्त्र पहनेके अनंतर बालक द्विवार आचमनकरे प्रमाण (याज्ञ० स्मृति अध्या० १ श्लोक ६६) "स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वारथ्योपसर्पणे । आचांतःपुनराचामेद्वासो विपरिधाय च" अर्थात् स्नान पान क्षुत (छींक) शयन भोजन बाजारसे आकर आचांतकृत पुरुप फिर आचमन करे भावार्थ इनमें दोबार आचमन करना चाहिये॥ अनंतर माणवक प्रवर सदृश त्रिगुण मुंजकी मेखलाको ग्रंथि दे आचार्य बालकके बंधन करे। इयंदुरुक्तं इस मंत्र को बालक पढे ॥

ॐ इयंदुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनतीमआगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादधानास्वसादेवीसुभगामेखलेयम् ॥ ॥१॥ ॐ युवासुवासाः परिवीतऽआगात् सउश्रेयान् भवति जायमानः॥तंधीरासः कवय उन्नयंतिस्वाध्यो मनसादे-

वर्यंत इति वा ॥ २ ॥ तत आचाराद्य-ज्ञोपवीतसहितभांडाष्टतयं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वातत्सदद्यामुकगोत्रः स्वकीयोपन-यनकर्मविषयकसत्संस्कारप्राप्त्यर्थं। इदं भाण्डाष्टतयं सयज्ञोपवीतं सदक्षिणं यथा यथा नामेति ॥

(मंत्रार्थ–इयंदुरुक्तमिति) यह मेखला मेरा जो अ-नुपनीत हुए वाण्यादिदोष उनको संपूर्ण तरहसे ख-ण्डन करतीहुई आई इसलिये।स्तुतियोग्य होनेसे देवी है पवित्र अति सुंदरवणको पवित्र करती हुई ऐसी यह मेखला स्वसा अर्थात् भगिनीवत् प्राण और अपा-नसे बलकी वृद्धि करती अति कोमल नित्य अभ्युदय मंगलकी संभावना करनेवाली हो वा 'युवा सुवासा' इस मंत्रसे मेखला वंधन करे ॥ तदनंतर आचारसे यज्ञोप-वीतसहित अष्टभाजन ब्राह्मणोंको दे ॥ तत्सत् इत्यादि देश और काल कथनपूर्वक अमुक गोत्र अपने उपन-यन संस्कारकी श्रेष्ठता प्राप्तिके लिये यह अष्ट भाजन यज्ञोपवीतदक्षिणादियुक्त यथा २ नामगोत्रादियुक्त ब्राह्मणोंको देताहै ॥

ततो यज्ञोपवीतं परिदधाति माणवकः

ॐयज्ञोपवीतमितिमंत्रस्य परमेष्ठीऋषि लिंगोक्ता देवता त्रिष्टुप्छंदो यज्ञोपवीतपरिधानेविनियोगः॥ॐयज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंचशुभ्रंयज्ञोपवीतंवलमस्तुतेजः॥ इतिमंत्रेण॥तत ऐणेयमजिनंतूष्णींपरिधत्ते।ततो माणवककेशपरिमितपालाशदण्डमाचार्यः तूष्णींतस्मै प्रयच्छति ॥

तदनंतर यज्ञोपवीत धारण बालक करताहै॥ यज्ञोपवीत इस मंत्रका परमेष्ठी ऋषिहै लिंगोक्त देवता जो यज्ञोपवीत धारण प्रयोगमें आगे लिखे हैं त्रिष्टुप्छंद यज्ञोपवीत धारणमें यह मंत्र विनियुक्त है ॥ (मंत्रार्थ यज्ञोपवीत मिति) हे माणवक यज्ञोपवीतको प्रतिमुंच अर्थात् धारणकर (प्रतिपूर्वक मुंचधातु धारणार्थमें होताहै)कैसा यज्ञोपवीत है आयुकी वृद्धि करनेवाला अग्र्य (श्रेष्ठ) शुभ्र निर्मल और बृहस्पतिजीके साथ जो प्रादुर्भूत हुआ ऐसे यज्ञोपवीतके धारण करनेसे आयु तेज बलकी वृद्धि तुमको अस्तु हो आयु बल तेजके लाभके लिये यज्ञोपवीत धारण करे यह वाक्यार्थ है॥

इसके अनंतर कृष्णाजिनको तूष्णीं धारण करे। अनंतर माणवकके केशपर्यंत पालाशदण्ड आचार्य तूष्णीं शिष्यके प्रति देवे ॥

तंचयोमेदण्ड इति प्रजापतिर्ऋषिर्दण्डो देवता। यजुर्दण्डग्रहणे विनियोगः। ॐ योमेदण्डः परापतद्वैहायसोधिभूम्याम् ॥ तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय। इति मंत्रेण माणवको गृह्णाति ॥ तत आचार्यो वारिणा स्वमञ्जलिं पूरयित्वा कुमारस्यांजलिंतेनैवांजलिजलेनपूरयति ॥ ॐ आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्जेदधातन। महेरणायचक्षसे ॥ ॐ योवः शिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः उशतीरिवमातरः ॥ ॐ तस्माअरंगमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ। आपोजनयथाचनः ॥ इतित्र्यृग्भिः ॥

योमेदण्डइति प्रजापति ऋषि दण्ड देवता यजु-

---

१ यह मंत्र यजुर्वेद, अध्याय ११ मंत्र ५० मे है ॥

श्छंद दण्डग्रहणमें यह मंत्र विनियुक्तहे ॥ [मंत्रार्थ] आकाशसे जो उद्भूत अर्थात् उत्पन्न जो दण्ड भूमिपर पडता भया तिसको फिर आयु चिरकाल जीवनके लिये ब्रह्मणे ब्रह्म अर्थात् वेदप्राप्तिके लिये ब्रह्मवर्चस तेजके-लिये मैं ग्रहण करताहूँ. वाक्यार्थ यहहे कि, पूर्व जन्ममेंभी मैं द्विज था इस जन्ममें भी अब ग्रहण कर्त्ता हूँ ॥ तदनंतर गुरु जलसे अपनी अंजलि पूर्णकर तिस जलसे माणवककी अंजलि आपोहिष्ठा इस मंत्रसे पूर्ण करताहे ॥ [मंत्रार्थ) आपोहिष्ठा इत्यादि तीन मंत्रोंका सिंधुद्वीप ऋषि गायत्रीछंद जलदेवता मार्जनमें विनियुक्त हे ॥ [मंत्रार्थ [हे जलदेव प्रसिद्ध यश और अनुभव किये तुम मुझको बलके लिये और अन्नादि भोगनेके लिये धारण करे और महान् सुंदर देखने योग्य अत्यंत कल्याणके देनेवाले बलपुष्टि करनेवाले दुग्ध घृत स्तन्य पानादिसे माताकी नाई आप मुझको रस देवें और जिस पापके नाशके लिये उत्पन्न करतेहैं, तिस रसके लिये हम शीघ्र जातेहैंही जलदेव आप मोक्ष प्राप्तिके लिये योग्य हमको उत्पन्न करो अर्थात् तुम्हारी कृपा और आचरणसे शौचादिसे हमको मोक्ष हो ॥ प्रमाण जैसे पातञ्जल दर्शन "शौचात्स्वांगे जुगुप्सापरैरसंसर्गः" इति ॥

ततः सूर्यमुदीक्षस्वेति आचार्यप्रधानंतरम् ॥ ॐ तच्चक्षुर्देवहितंपुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत ॥ पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदःशतꣳशृणुयामशरदःशतंप्रब्रवामशरदःशतमदीनाःस्यामशरदःशतंभूयश्चशरदःशतात् ॥१॥ इत्यनेनादित्यं पश्यति॥अथकुमारस्यदक्षिणांसंसहृदयं दक्षिणहस्तेनस्पृशत्याचार्यः ॥ ॐ ममव्रतेतेहृदयंदधामि ममचित्तमनुचित्तं ते अस्तु । ममवाचमेकमनाजुषस्व बृहस्पतिष्ट्वानियुनक्तुमह्यम् ॥ इतिमंत्रेण ॥

सूर्यदेखो इस गुरुवाक्यके अनंतर [मंत्रार्थ]तच्चक्षुः इस मंत्रका- दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि अक्षरातीति पुर उष्णिक् छंद सूर्य देवता सूर्यके उपस्थानमें विनियुक्त है ॥ स्वाहा स्वधा प्रभृति संपूर्ण देवता और पितर जिसके उदय होनेसे तृप्त होतेहैं ॥ ऐसा देवहितनेत्रोत्पन्न होनेसे चक्षु जो सूर्य भगवान्! श्रमा० यजु०अध्या

१ यजु०अध्या० ३६ मंत्र २४

२५ (चक्षोः सूर्योऽजायत) अर्थ-विराट् भगवान्केनेत्रों से सूर्य प्रादुर्भूत भया। आदिमें कामादि और अविद्यादि दोषरहित उदय होता ऊर्ध्वको प्राप्त होताहे । उस सूर्य भगवान्को हम शत १०० वर्ष देखें और जीवत रहें कर्णोंसे यश श्रवण करें। वाणीसे श्रेष्ठस्तुत्यादि करें और दीनता रहित शत वर्षसे अधिक वीस वर्ष जीवत रहें ॥ तदनंतर कुमारके साथ हृदयके दक्षिण अंशको दक्षिण करसे आचार्य स्पर्श करताहे ममव्रते इस मंत्रसे (मंत्रार्थ) मेरे शास्त्रविहितनियमाचरणमें तुम्हारे हृदय को बृहस्पति धारण करे और मेरे चित्तके अनुकूल तुम्हाराचित्तहोवे और मेरे वचनको सुखपूर्वक करो ॥

ततः कुमारस्यदक्षिणहस्तं गृहीत्वातंपृच्छति । कोनामासि श्रीअमुकशर्मा अहंभोः इति कुमार आह ॥ कस्य ब्रह्मचार्यसीत्याचार्यः । भवत इति कुमार आह ॥ पुनराचार्यो भाषत। ॐइंद्रस्यब्रह्मचार्यस्याग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यः श्रीअमुकशर्मन् । अथ माणवकंबद्धांजलिपूर्वादिदिक्षु प्रदक्षिणमुपस्थानं कारयति ॥ अथाचार्योमाणवकं भूतेभ्यः

परिददाति । तत्र आचार्यस्य मंत्रपाठः ॥ ॐप्रजापतयेत्वापरिददामीति प्राच्याम् ॐदेवायत्वासवित्रेपरिददामि इति दक्षिण स्याम् । ॐअद्भयस्त्वोषधीभ्यः परिद दामि इति प्रतीच्याम् । ॐ द्यावापृथि वीभ्यां त्वा परिददामि इति उदीच्याम् । ॐविश्वेभ्यस्त्वादेवेभ्यः परिददामीत्यधः ॐसर्वेभ्यस्त्वाभूतेभ्यः परिददाम्यरि ष्टये इत्यूर्ध्वम् ॥

तिसके अनंतर कुमारके दक्षिण हस्तको ग्रहण कर गुरु पूँछताहै किसका ब्रह्मचारी है। तुम्हारा सर्व माणवक कहै(मंत्रार्थ)त्रिलोकी नाथ इंद्रका ब्रह्मचारी हों तुम्हारा अग्नि आचार्य और हम हैं ॥ प्रमाण--गुरुरग्निर्द्विजाती नाम् अनंतरं बद्धांजलि कुमारको पूर्वादि दिशोंमें उपस्थान गुरु कराताहै ॥ और भूतोंके प्रति समर्पण करताहै । (मंत्रार्थ) हे माणवक तुमको बृहस्पति और सूर्यदेव और जल ओषधी आकाश भूमि संपूर्ण इंद्रादिदेवताके प्रति तथा सर्व राक्षसादिभूतोंके प्रति आपत् (विपत्ति) नाशके लिये पूर्वादि क्रमसे समर्पण करतेहैं ॥

ततोऽग्निंप्रदक्षिणीकृत्य आचार्यदक्षिण

दिशिउपविशतिमाणवकः । ततःपुष्पचं दनतांबूलवासांस्यादाय ततः ॐअद्यकर्त व्योपनयनहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्ष णरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचंदनतांबूलवासोभिर्ब्र ह्मत्वेनत्वामहंवृणे इति ब्रह्माणं वृणुयात इति । वृतोस्मीतिप्रतिवचनम् । पुष्पचंदन तांबूलवस्त्राण्यादाय । ॐअद्यकर्तव्योपनय नकर्मणिहोतृत्वकर्मकर्तुममुकगोत्रममु कशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचंदनतांबूल वासोभिर्होतृत्वेनत्वामहंवृणे । इतिहोतारं वृणुयात् । ॐ स्वस्तीतिप्रतिवचनम् । ॐय थाविहितंकर्मकुर्वित्याचार्येणोक्ते । ॐक रवाणीतिब्राह्मणो वदेत् । ततोऽग्नेर्दक्षि णतः शुद्धमासनं दत्त्वा । तदुपरिप्रागग्रा न्कुशानास्तीर्य ब्राह्मणमग्निं प्रदक्षिणं कारयित्वास्मिन्कर्मणि त्वंमे ब्रह्माभवेत्य भिधायभवानीति तेनोक्ते । तदुपरि ब्रह्मा-

णमुदङ्मुखमुपवेश्य । ततः प्रणीतापा
त्रंपुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैरा
च्छाद्य ब्रह्मणोमुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः
कुशोपरि निदध्यात् । ततः परिस्तरणंब
र्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानांतम् ।
ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यांतम्
अग्नितःप्रणीतापर्यन्तं ततोऽग्नेरुत्तरतःप
श्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थंकुशत्रयंपवि
त्रकरणार्थं साग्रमनंतगर्भकुशपत्रद्वयंप्रो
क्षणीपात्रम् आज्यस्थालीसंमार्जनार्थं
कुशाः उपयमनकुशाः समिधस्तिस्रः
स्रुव आज्यं पट्पंचाशदुत्तराचार्यमुष्टि
शतद्वयावच्छिन्नामतण्डुलपूर्णपात्रं पवि
त्रच्छेदनकुशानांपूर्वपूर्वदिशिक्रमेणासा
दनीयंततःपवित्रच्छेदनकुशैःपवित्रेच्छि
त्वा सपवित्रकरेणप्रणीतोदकं त्रिःप्रोक्ष
णीपात्रेनिधायअनामिकांगुष्ठाभ्यां गृही
तपवित्राभ्यां तज्जलं किञ्चित्त्रिरुत्क्षिप्य
प्रणीतोदकेनप्रोक्षणींत्रिरभिषिच्य । प्रो

क्षणीजलेनासादितवस्तुसेचनं कृत्वाऽ
ग्निप्रणीतयोर्मध्येप्रोक्षणीपात्रं निदध्यात् ।

तदनंतर अग्निको प्रदक्षिण कर आचार्यके दक्षिण दिशामें माणवक बैठताहै। फिर पुष्प चंदन तांबूल वस्त्रको ले ॐ अद्यकर्तव्य इस संकल्पसे ब्रह्माको वर्णी दे। फिर इसी प्रकार पुष्प चंदन ताम्बूल वस्त्र ले होताको वर्णी दे। यह दोमें स्वस्ति कहे॥ यथा विहितकर्म करो ऐसे आचार्य वाक्यके अनंतर,करताहै यह ब्रह्मा कहे। अनंतर अग्निके दक्षिणकोणमें शुद्ध आसनको दे उसके ऊपर पूर्वाग्रकुशको बिछाय ब्राह्मणको अग्निकी प्रदक्षिणा करवाय इस उपनयनमें आप ब्रह्मा हो यह कह उदङ्मुख ब्राह्मणको बिठावे। तद नंतर प्रणीतापात्रको आगेकर जलसे भर कुशसे आच्छादनकर ब्रह्माके मुखको देख अग्निसे उत्तर कुशा-पर रखदे। फिर कुशसे चतुर्थ भागले अग्निकोणसे ईशानपर्यंत ब्रह्मासे, अग्निपर्यंत निर्ऋतिकोणसे वायव्यकोणपर्यंत हवनाग्निसे प्रणीतापर्यंत क्रमसे पूर्वोत्तर क्रमसे कुश आस्तरण करे। तदनंतर अग्निसे उत्तर पश्चिमदिशामें पवित्रछेदनकेलिये तीन कुश पवित्र करणके लिये मध्यकी शाखारहित साथ अग्रके कुश-

पत्र दो प्रोक्षणीपात्रम् आज्य–घृतकी स्थाली–संमार्जन
(शोधनके लिये कुशा उपयमनकुशा तीनसमिधा–
स्रुव ब्रह्महस्त) घृत (२५६) मुष्टिमात्र अर्थात् एक
ब्राह्मणतृप्तिकारक तंडुलोंसे युक्त पूर्णपात्र पवित्रच्छेदन
कुशाके पूर्वकी तरफ यह क्रमसे रखने ॥

तिसके पीछे पवित्रछेदनकुशोंसे पवित्र छेदनकर
पवित्रसहित हस्तसे प्रणीताके जलको तीनवार प्रोक्ष-
णीपात्रमें स्थितकर पवित्रयुक्त अनामिका और अंगुष्ठसे
वह जल किंचित्मात्र त्रिवार सिंचनकर तदनन्तर प्रोक्षणी
जलसे प्रोक्षणीको त्रिवार ऊपरको फैंक प्रणीता जलसे
सर्ववस्तु सिंचन करे अग्नि और प्रणीतापात्रके मध्यमें
प्रोक्षणी पात्र स्थित करे ॥

आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । अधिश्र
यणं ततः कुशं प्रज्वाल्याज्योपरि प्रद-
क्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत् प्रक्षिप्य स्रुवं
त्रिःप्रतप्य संमार्जनकुशानामग्रैरंतरतो
मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेना-
भ्युक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं कृत्वा
पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम्रातत उत्थायोपय-
मनकुशान्वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं

मनसा ध्यात्वा तूष्णीं घृताक्तास्तिस्रः समिधः प्रक्षिपेत् उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निं । पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातितदक्षिणजानुः ब्राह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति तत्र तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थित घृतशेपस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥

आज्य (घृत) स्थाली पात्रमें घृतको स्थितकर अग्निपर रख उतार कुशको जलाय दक्षिण क्रमसे भ्रमण करवाय अग्निमें फेंकनी । और स्रुवको तीनवार तपकर संमार्जन कुशके अग्रभागसे अंतरसे और मूलसे बाहिर संमार्जन (शुद्धकर) प्रणीताजलसे अभ्युक्षणकरे । यदि घृतमें कुछ अशुद्ध वस्तु हो वह निकाल फिर प्रोक्षणीवत् उत्पवन (ऊर्ध्वको फेंकना) कर तदनंतर उठकर वेणीरूप उपयमन कुशाको वामहाथमें ले ब्रह्माका ध्यानकर चुपचाप (तूष्णीं) घृतयुक्त तीन समिधा अग्निमें क्षेपण करे । फिर बैठ पवित्रयुक्तप्रोक्षणीजलसे प्रदक्षिणक्रमसे अग्निको पर्युक्षण- कर प्रणीतामें पवित्रे स्थितकर दक्षिण जानु (गोडा)

निधाय (नम्रकर) कुशद्वारा ब्रह्मासे युक्त हो प्रदीप्त अग्निमें स्रुवसे घृतआहुति हवनकरे । आहुतिके अनंतर शेषघृत जो स्रुवमें लग्न हो उसका प्रोक्षणीमें प्रक्षेप करे (पावे) ॥

ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये । इति मनसा । ॐ इंद्राय स्वाहा इदमिंद्राय । इत्याघारौ । ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये ॥ ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय । इत्याज्यभागौ ॥ ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये । ॐभुवः स्वाहा–इदं वायवे । ॐस्वः स्वाहा–इदं सूर्याय ॥ एतामहाव्याहृतयः ॥ यजुर्वेद अध्याय ॥२१ ॥ मंत्र–३ ॐत्वन्नोऽअग्नेवरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा ँसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् । शु०यजु०अध्या० २१ मंत्र–४ ॥ ॐ सत्वन्नोऽअग्ने ऽवमो भवोतीनेदिष्ठोऽअ

स्याऽउपसो व्युष्टौ।अवं यक्ष्वनो व्वरुण ᳪरराणो व्वीहिमृडीक सुहवो नऽएधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् ॥

प्रजापतये स्वाहा यह सप्तमहाव्याहृतियाँहैं प्रथममंत्र मनमें कहना ॥ त्वन्नो और सत्वन्नो इनमंत्रोंका वामदेव ऋषित्रिष्टुपछंद अग्नि और वरुण देवता सर्वप्रायश्चित्त निवृत्तिमें विनियुक्तहै [मंत्रार्थत्वन्न इति] हे अग्ने तुम इस कर्ममें वैगुण्य होनेसे वरुणदेवके क्रोधको दूरकरो कैसे तुमहो जो सर्वकर्मोंमें साक्षी चतुर हो और सर्वसे उत्तम (श्रेष्ठ) हो और सर्व देवताओंको यज्ञका भाग देनेवाले हो प्रकाशमान् हो इसलिये मंदबुद्धिवाले हमारे को जान हमारेसे की हुई अवज्ञा(अनादरको) क्षमा कर सर्वप्रकारसे कल्याण (सुख) देवो ॥ [मंत्रार्थ-सत्वन्न इति) हे अग्ने तुम सर्वको पालन करनेवाले हो इसलिये आज (अद्य) दिनके प्रातःकालसे लेकर मुझको रक्षा करो । केवल रक्षा नहीं किंतु हमारेकरं बुलाये हुए तुम सुखपूर्वक आकर सुखके देनेवाला जो चरु (द्रव्यविशेष) वह यज्ञके स्वामी (मालिक) वरुण देवताजीको देकर पूजन करो। जिससे वरुण देवभी प्रसन्न हो हमारेको सुखदेवें ॥ इति ॥

यजु० अध्याय० मंत्र ॥ ॐअयाश्चा
ग्नस्यनभिशस्तिपाश्चसत्यमित्वमयाऽअ
सि । अयानो यज्ञंवहास्य यानो धेहि
भेषजᳪस्वाहा । इदमग्नये ॥ यजुर्वेदअ
ध्याय मंत्र ॐ येतेशतं वरुणयेसहस्रं
यज्ञियाः पाशावितता महान्तः तेभिर्नो
अद्यसवितोत्तविष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः
स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे वि
ष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यःस्वर्केभ्यः ॥

(मंत्रार्थश्च अयाश्चाग्न इति) हे अग्ने तुम सर्वान्तर्यामी
और प्रायश्चित्तद्वारा सर्वप्राणियोंको (पुरुषोंको) शुद्ध
करनेवाले और शुभके दाता हमारे किये हुए यज्ञको
कृपालु होनेसे इंद्रादिदेवताओंको देनेवाले हो इस लिये
ये हमकोभी (भेषज) अर्थात् सुखके देनेवाला दुःख
विनाशक अपूर्व आनन्द देवो ॥ ३ ॥ (मंत्रार्थ)-येतेशत-
मिति) हे वरुण यज्ञके विघ्नसे पैदा भये हुए बडे २
भारी महान् कठिन जो तुम्हारे शतसंख्याक और सह
स्रसंख्याक पाश हैं वह पापरूप पाश हमारे सविता
(सूर्य) विष्णुरूप इंद्र और सर्व देवता वायु सुन्दर हृदय
वाले आदित्य आदि हमारे पापोंको नष्ट करें इति॥४॥

यजुर्वेद-अध्याय १२ मंत्र १२ ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यम-श्रंथाय ॥ अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाय ॥ एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः (ततोऽन्वारब्धं विना) ॐ प्रजापतये स्वाहा॥इदं प्रजापतये । इतिमनसा प्राजापत्यम्।ॐअग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते० ततः संस्रवप्राशनं आचमनंच।ततो ब्रह्मणे दक्षिणादानम्। ॐअद्यएतस्मिन्नुपनयनहोमकर्मणिकृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्राया मुकशर्मणेब्राह्मणाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहंसंप्रददे इति दक्षिणादानम् ॥

(मंत्रार्थ-उदुत्तममिति) उत्तम मध्यम अधम ये तीन वरुणके पाश हैं। हे वरुण जो तुम्हारा उत्तम पाश है उससे हमारी रक्षा करो और जो मध्यम पाश है उससे भी हमारी रक्षा करो (अर्थात्) पाशको शिथिलकरो

सुखपूर्वक गमन करो (जाओ) प्रमाण (यज्ञोवै विष्णु रिति) हे अंतर्यामि ब्रह्मस्वरूप यह यज्ञका फल तुम्हारे अर्पण किया जाताहै तुम वायुको अर्पण करो ॥ इति ॥ हे वरुण हम ब्रह्मचर्यसे तुम्हारेसे निरपधार (अपराध रहित) होकर दीनतासे रहित होतेहैं । प्रमाण--(दीन तायां दिति प्रोक्ता दितिस्स्याद्दैत्यमानरि) इस वचनसे दिति नाम दीनता काभी है ॥८॥ अनंतर प्रजापतये इस मंत्रको मनमें कह आहुति देवे । और संस्रवका प्राशन तदनंतर ब्रह्माको दक्षिणाका दान तत्सदद्य इत्यादि देशकालसंकीर्तन कर देवे ॥

ॐस्वस्तीतिप्रतिवचनम् । ततोब्रह्मग्रंथि विमोकः ततः। यजु-०अध्याय-मंत्र॥ ॐ सुमित्रियानआपऽओषधयःसंतुइति पवित्राभ्यांजलमानीयतेनशिरः संमृज्य ॐदुर्मित्रियास्तस्मैसंतुयोऽस्मान्द्वेष्टिय ञ्चवयंद्विष्मः॥इत्यैशान्यां प्रणीतां न्यु-ब्जीकुर्यात् । ततःस्तरणक्रमेणबर्हिस्तथा प्यघृतेनाभिघार्यहस्तेनैव जुहुयात्॥ य जुर्वेद-अध्याय८मंत्र ॥२१॥ ॐदेवागा तुविदोगातुंवित्त्वागातुमित मनसस्पतऽ

इमंदेवयज्ञ७स्वाहा॒वातधा॒ःस्वाहा-इति बर्हिर्होमः ॥

स्वस्तिहो यह ब्रह्मा कहे। तदनंतर ब्रह्मग्रंथिको मोचन करना ।(मंत्रार्थ) [सुमित्रियान इति] जल और औषधी हमारेको परम सुख देवे । इसमंत्रसे शिरमें जल सिंचन करें॥[दुर्मित्रियान इति] और जो हमारेसे द्वेष करते और जिनको हम शत्रु मानतेहैं उनके प्रति यह जल औषधी दुःख को देवे । इस मंत्रसे जलसहित प्रणीतापात्रको न्युब्ज--अर्थात् पुट्टी (मुंधी) करे ईशानकोणमें ॥ अनंतरे पूर्वोक्त आस्तरणक्रमसे कुश उठाय घृतसे युक्त कर देवागातु यह मंत्र पढ हाथसे हवन करे (मंत्रार्थ) [देवागातु इति] हे देवतालोक तुम यज्ञके जाननेवालेहैं इस लिये विष्णुरूपका यज्ञको जानकर सुखपूर्वक गमन करो (जाओ) प्रमाण--(यज्ञोवै विष्णुरिति) हे अंतर्यामि ब्रह्मस्वरूप यह यज्ञका फल तुम्हारे अर्पण किया जाताहै तुम वायुको अर्पण करो ॥ इति॥

तत आचार्यः कुमारस्यानुशासनंकरोति। ॐब्रह्मचार्यसीत्याचार्यः ।ॐअसानीति ब्रह्मचारी।ॐअपोशानइत्याचार्यः । ॐ अशानीतिकुमारः ॐकर्मकुर्वित्याचार्यः।

ॐकरवाणीतिमाणवकः।ॐमादिवासुषु प्स्वइत्याचार्यः।ॐनस्वपानीतिकुमारः। ॐवाचंयच्छइत्याचार्यः । ॐयच्छानी तिकुमारः । ॐसमिधमाधेहीत्याचार्यः ॐआदधानीतिमाणवकः ।अथाग्नेरुत्त रतः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायाचार्याः।चर णोपसंग्रहणपूर्वकमुपसन्नायाचार्यं समी क्ष्यमाणायाचार्यः स्वयमपिसमीक्षिता यास्मैनिवारितशंखतूर्यादिशब्द इष्टांश केसावित्रीमन्वाह ॥

तिसके अनंतर आचार्य (गुरु) बालकको शिक्षा कर्ताहै हे बालक! तुम ब्रह्मचर्य धारण किया-उत्तर गुरुजी किया। हे कुमार तुम आपोशन किया पूर्वक अन्नभक्षण करना । गुरुजी कहूंगा । आपोश किया लिखतेहैं कि जिसकाल भोजन भक्षण करना हो उसके प्रथम (अमृतो पस्तरणमसि) इस मंत्रसे दक्षिणक्रमसे अन्नवाले पात्रको अभिमंत्रण करना अर्थात् जलसे रक्षाकरनी तदनंतर ॐभूपतये स्वाहा इस मंत्रसे प्रथम ग्रासः ॐभुवन पतये स्वाहा इस मंत्रसे द्वितीयग्रासः ॐभूतानां पतये स्वाहा इस मंत्रसे तृतीय (तीसरा) ग्रास अर्थात् अन्नको तीनखंड

क्रमपूर्वक पृथिवीपर स्थित करने (रखदेने और जल सिंचन करना तदनंतर घृतयुक्त अन्नकी पांच आहुति मुखमें डालनी इनपांचमंत्रोंसेॐप्राणाय स्वाहा-१ । ॐआपानायस्वाहा-२ॐउदानायस्वाहा-३। ॐ व्यानाय-स्वाहा-४ । ॐ समानायस्वाहा-५ ॥ अनंतर तूष्णी हो यथारुचि भोजनकर पीछे । ॐ अमृतापिधानमसि [हाथमें जल ले यह मंत्रपढ पृथिवीपर प्रक्षेप (फैंक) देय यह प्रतिदिन भोजन कालमें द्विजातिमात्रको कर्तव्य है इसको आपोशन क्रिया कहते हैं] ॥ प्रमाण भी जैसे-याज्ञवल्क्यस्मृति-अध्याय १ प्रथम स्मृति ३१ यथा-'कृताग्निकार्योभुंजीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया । आपोशनक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन्' ॥ अर्थ-अग्निमें प्रातर्होमकर भोजन-कालमें गुरुको आज्ञा ले वाग्यत (चुपकर) आपोशनक्रियापूर्वकअन्नका सत्कार कर नानिंदताहुआ भक्षण करे और भोजनका काल (प्रथम प्रहरके अनंतर द्वितीयके बीच २ में लिखाहै भावप्रकाशमें-यथा-'याममध्ये नभोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्'-) (कर्मसंध्यादिकरो इसगुरुवाक्यके अनंतर करताहे यह शिष्य कहे ॥ ब्रह्मचारीको जो प्रतिदिन कर्म कर्तव्यहै वह याज्ञवल्क्यजी लिखतेहैं ॥ याज्ञ० स्मृ० अ० १-स्मृ० २२ । २३ ।२४।२५ । २६ ।२७॥

यथा-"स्नानमब्दैवतैर्मंत्रैर्मार्ज्जनं प्राणसंयमः । सूर्य स्यचाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहंजपः ॥ गायत्रींशिर सासार्द्धंजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तांत्रिर यंप्राणसंयमः॥प्राणानायम्य संप्रोक्ष्य ऋचेनाब्दैवतेनतु। जपन्नासीतसावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ॥ सन्ध्यांप्राक्र प्रातरेवह तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् । अग्निकार्यं ततःकुर्या-त्संध्ययोरुभयोरपि ॥ ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावह-मिति ब्रुवन् ।गुरुश्चैवाप्युपासीतलब्धंचास्मै निवेदयेत् हितंचास्य चरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥" स्नानकर संध्या कर गायत्रीका जपकरे इसीतरह सायंकालकी संध्यकरे (तथामध्याह्नकालकी) अग्निमें होम प्रातः-काल और सायंकालमें ॥ अनंतर अपना नाम ले गुर्वा-दिवृद्धजनोंको अभिवादन (प्रणाम) करे और वेदादि पढनेके लिये गुरूकी आज्ञा ले समीपजावे प्राप्तवस्तु गुरुजीको निवेदनकरे अर्थात् मन वाणी शरीरसे गुरुके हितको आचरण करे ॥दिनमें शयन(सोना)नहीं करना यह गुरुवाक्यके अनंतर नहीं शयन दिनमें करूंगा यह शिष्य कहे ॥ दिनके शयनमें बडेभारी दोष चिकित्सामें लिखे हैं। रात्रौजागरणं दिवा च शयनमित्यादि॥वाचं-यच्छ इस गुरुवाक्यके पीछे यच्छानीति यह शिष्य कहें समिध ग्रहणकर करताहूँ इत्यादि ॥ अब जो ब्रह्मचारी

को वर्जनीय वस्तुहैं सो वह लिखतेहैं–मधु (शहद) मांस अंजन (सुरमा) उच्छिष्ट (जूंठ) शुक्त (बासाअन्न) स्त्रीसे भोग समीपवासादि प्राणियोंकी हिंसा और उदयास्तकालमें सूर्यका अवलोकन निंदा विवाद हठ इत्यादिवर्जन करे प्रमाणभी–जैसे--याज्ञ-०स्मृति अ० प्र०स्मृ–३३ मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् ॥ भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्--आदिशब्दसे दंभ मात्सर्यादि ॥ अथ शिक्षा ग्रहणके अनंतर ५ अग्निके उत्तर प्रत्यङ्मुख गुरुके चरण ग्रहण कर नम्रीभूत होकर जो गुरुको देखता औ आपभी उसकी ओर (तरफ) देख शंखतूर्यादिशब्दको निवारणकर यथोचित लग्न मुहूर्त इष्ट नवांशमें गुरुशिष्यको परीक्षा कर गायत्री उपदेश करे॥ वर्ष षट्मास परीक्षा कर गायत्री उपदेश वा ब्राह्मणको शीघ्रही करे। प्रमाण गृह्यसूत्र-"सद्यस्त्वेव गायत्री ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण" इति श्रुतेः। गायत्री उपदेश करनेकी विधि पद्धतिकारोंने नहीं लिखी इसलिये सूत्रकारका प्रमाण देतेहैं–

(गृह्यसूत्र पारस्करकांड--२--यथा पच्छोर्द्धर्चशः सर्वां च तृतीयेनानुवर्तयंति) अर्थात् प्रथमवार सव्याहृतिपूर्वक एक पाद गायत्रीका उपदेश करना द्वितीय (दूसरी) वार अर्द्ध मंत्र उपदेश करना तृतीय (तीसरी)

बार आवृत्तिमें संपूर्ण मंत्र उपदेश करना चाहिये। तद्यथा। ॐभूः ॐभुवःॐस्वः ॐतत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ प्रथमावृत्तौ ॥ ॐभूः ॐभुव- ॐस्वः ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहीति द्वितीयावृत्तौ ॥ ॐभूः ॐभूवः ॐस्वः ॐतत्सवितुर्वरेण्यं । भर्गो देवस्य धीमहि । धियोयोनः प्रचोदयात् । आपोज्योति रसोमृतं ब्रह्म- भूर्भुवः स्वरोमिति ॥ यह क्रम गृह्यसूत्रमें लिखाहै ॥ पद्धतियोंमें संपूर्ण मंत्रकी त्रिरावृत्ति कराई जाती है।

(गायत्रीस्वरूपमाह)

ॐ३म् भूर्भुवः स्वंःतत्संवितुर्वरेंण्यं भर्गो देवस्यं धीमहि। धियो योनंः प्रचोदयांत् ॐ ३ ॥

(तत्) तस्य (सवितुः) जगदुत्पादयितुः सर्वान्त- र्यामिणः सूर्यस्य (वरेण्यं) वरणीयं अतिश्रेष्ठमित्यर्थः (भर्गः) तेजः (देवस्य) द्योतनात्मकस्य दीप्यमान- स्येत्यर्थः (धीमहि) वयं ध्यायामः (चिंतयामः)- (धियः) धर्मादिविषयिणीर्बुद्धीः (यः) सविता (नः अस्माकं (प्रचोदयात्) प्रेरयति ॥

अन्वयः-यः सविता प्रेरयिता नः अस्माकं धियः धर्मादिविषयबुद्धीः प्रचोदयात् तत् तस्य सवितुः प्रेर-

कस्य सूर्यस्य (ब्रह्मणः) देवस्य दीप्यमानस्य–(दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकांतिगतिषु–) वरेण्यं वरणीयं भजनीयमिति भूरादिसप्तलोकप्रकाशकम् आपः स्वरूपं ज्योतिः स्वरूपं रसः आनंदस्वरूपम् अमृतं मोक्षरूपं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरूपम् ॐकार स्वरूपं च भर्गः तेजः धीमहि ध्यायामः ॥

(संक्षिप्त-भाषार्थ)

जो सविता देवता हमारी चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ काम मोक्ष) विषयवाली बुद्धिको शुभकामोंमें प्रेरणा करे उस जगत्के उत्पन्न करनेवाले द्योतमान प्रकाशमान ब्रह्मस्वरूप सूर्य भगवान्के अतिश्रेष्ठ सप्तलोक जल तेज रस ॐकाररूप भर्ग तेजको हम ध्यान करतेहैं ॥

भारद्वाजस्मृतौ गद्यपद्याभ्यां गायत्र्यर्थो दर्शितो यथा–
"अथाहमर्थं गायत्र्याः प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥
द्विजोत्तमानां सद्भक्त्या जपादीनि प्रकुर्वताम् ॥१॥
विश्वासभक्तिजननं मन्त्रैर्यज्ज्ञानमुत्तमम् ॥
तस्मादर्थं विजानीयाद्यत्नेन जपकृद्द्विजः ॥ २ ॥
द्वाभ्यां विश्वासभक्तिभ्यां जपादीनां महत्तरम् ॥
फलं भवेज्जपकृतामिति वेदेषु भाषितम् ॥ ३ ॥
पदानि दशमंत्रस्य तदादीनि यथाक्रमात् ॥
पदं प्रत्यर्थनिष्पत्तिः स्पष्टं तु क्रियतेऽधुना ॥४॥"

(तत् १) इति द्वितीयैकवचनम् । अनेकजगदुत्पत्तिस्थितिलयकारणीभूतमुपकथ्यमानं निरुपमं तेजः सूर्यमण्डलाभिधेयं परं ब्रह्माभिधीयते।सवितुरिति२षष्ठ्येकवचनम् । पुञ्प्राणिप्रसवे इत्यस्य धातोरेतद्रूपम् । सर्वस्य भूतजातस्य प्रसवितुरित्यर्थः॥वरेण्यं ३ वरणीयं प्रार्थनीयं नियमादिभिरपगतकल्मषैः सततं ध्येयम् । भर्गः४भञ्जो आमर्दने भृजि भर्जन इत्येतयोर्धात्वोर्भजतां पापभञ्जनहेतुभूतम् । अथवा भ्राज दीप्तावित्यस्य धातो भर्गः तेज इत्यर्थः । देवस्य ५ वृष्टिदानादिगुणयुक्तस्य निरतिशयस्येत्यर्थः । दीप्यतेः प्रकाशार्थत्वात् । धीमहि ६ मध्ये चिंतयामि निगमनिरुक्तविद्यारूपेण चक्षुषा योसावादित्यो हिरण्मयः पुरुषः सोहमिति चिन्तयामि । धियः ७ इति द्वितीया बहुवचनम् ॥ य इति ८ छान्दसत्वाल्लिंगव्यत्ययः । यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरेण्यमस्माभिरभिध्यातम् भर्गो जपतां पापभञ्जन हेतुभूतं धीमह्युपास्महे । तत्तेजो नोऽ ९ स्माकंधियो १० बुद्धीः श्रेयस्करेषु कर्मसु प्रचोदयात् प्रेरयेदित्यर्थः॥

"एषाव्याख्या तु गायत्र्याः सर्वपापप्रणाशिनी ।
विज्ञातव्या प्रयत्नेन द्विजैः सर्वशुभेच्छुभिः ॥
जपस्याभ्यंतरे व्याख्या स्मर्तव्या मनसा द्विजैः ।
स्मरणात्सर्वपापानि प्रणश्यंति न संशयः ॥"

अथ प्रत्यक्षरं देवताभेदमाह योगियाज्ञवल्क्यः ॥ अक्षराणां तु दैवत्यं संप्रवक्ष्याम्यतः परम् । आग्नेयं (तत्) प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं (स) द्वितीयकम् ॥ तृतीयं (वि) सूर्य दैवत्यं चतुर्थं (तु) वैद्युतं तथा ॥ पञ्चमं (व) यमदैवत्यं वारुणं (रे) षष्ठमुच्यते । बार्हस्पत्यं सप्तमं तु (ण) पार्जन्यमष्टमं (यम्) विदुः । ऐन्द्रं तु नवमं (भ) ज्ञेयं गांधर्वं दशमं (र्गोः) तथा । पौष्ण मेकादशं (दे) प्रोक्तं मैत्रावरुणं (व) द्वादशम् । त्वाष्ट्रं त्रयोदशं (स्य) ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम् (धी) मारुतं पंचदशकं (म) सौम्यं षोडशकं (हि) स्मृतम् । सप्तदशं (धि) त्वाङ्गिरसं वैश्वदेवमतः परम् । (यः) आश्विनं चैकोनविंशं (यः) प्राजापत्यं तु विंशकम् । (नः) सर्व देवमयं प्रोक्तमेकविंश (प्र) मतः परम् ॥ रौद्रंद्वाविं-शकं (चो) प्रोक्तंत्रयोविंशन्तु (द) ब्राह्मकम । वैष्णवं-(यात्) चतुर्विंशमेता ह्यक्षरदेवताः । जपकाले तु-संस्मृत्य तासां सायुज्यतां व्रजेत् ॥

(विशेष द्रष्टव्य)

शंका करतेहैं कि छंदश्शास्त्रमें षट् ६ अक्षरके पाद वाला गायत्री छंद लिखाहै । यथा वृत्तरत्नाकरे--उक्ता त्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठान्यासपूर्विका । गायत्र्युष्णि-गनुष्टुप्च बृहती पंक्तिरेव च ॥ त्रिष्टुप् च जगतीचैव

तथातिजगती मता। शाकरी सातिपूर्वास्यादष्ट्य त्यष्टी ततः परम्॥धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिरा कृतिः। विकृतिःसंस्कृतिश्चापि तथातिकृतिरुत्कृतिः॥ इत्युक्ता छंदसां संख्येति॥ अर्थ--उक्ता छंद। एक १ अक्षरके पादका है। अत्युक्ता २--अक्षरोंके पादका। मध्याछन्द ३--अक्षरोंके पादका। प्रतिष्ठा ४--अक्षरोंके पादका। सुप्रतिष्ठा ५--अक्षरोंके पादका। गायत्री छन्द ६--अक्षरोंके पादका। उष्णिक् ७--अक्षरोंके पादका इत्यादि २७ अक्षरतकक्रमपूर्वक छन्दोंके पाद होतेहैं इसलिये चारही वेदोंमें पद् अक्षर पाद वाले गायत्री नामसे वहुत छंद हैं तो इसमंत्रका उपदेश किया जाता है उत्तर यह है कि (पंकज) --पंकाज्जायते इति. पंकजम् अर्थ--जो पंक (कीचड) से उत्पन्न हो उसको पंकज कहतेहैं यद्यपि पंकसे कुमुद (कंमीया) नापे-रोड इत्यादि अनेक वस्तु उत्पन्न होतीहैं तोभी पंकज शब्द कमलकाही रूढि प्रसिद्धिका वाचक है इसप्रकार यद्यपि गायत्री छंद अनेक हैं तथापि रूढि प्रसिद्धिसे गायत्री छंद इस मंत्रकाही बोधक है और इस मंत्रको ही सर्व सिद्धि भुक्तिमुक्तिदायक प्राणरक्षक होनेसे उपदेश कियाजाताहै। प्रमाण व्यासो यथा--"गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीयं ततः स्मृता" इति॥ इसलिये इस

गायत्री मंत्रकीही, अति प्रशंसा (स्तुति) फल महात्मा योगी याज्ञवल्क्य जी लिखतेहैं--

प्रमाण ।

गायत्री चैव वेदांश्च तुलया समतोलयत् ।
वेदा एकत्र सांगास्तु गायत्री चैकतः स्थिता ॥
सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो मताः ।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा ॥
ॐकारपूर्विकास्तिस्रो गायत्रीं यश्च विन्दति ।
चरितं ब्रह्मचर्यस्य स वै श्रोत्रिय उच्यते ॥
एतया ज्ञातया सर्वं वाङ्मयं विदितं भवेत् ।
उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम् ॥
एवं यस्तु विजानाति गायत्रीं ब्राह्मणस्तु सः ।
अन्यथा शूद्रधर्मा स्याद्वेदानामपि पारगः ॥

तथाच ऋष्यशृंगः ।

सर्वात्मना हि या देवी सर्वभूतेषु संस्थिता ।
गायत्री मोक्षहेतुर्वै मोक्षस्थानमलक्षणम् ॥

कूर्मपुराणे ।

गायत्री देवजननी गायत्री पापनाशिनी ।
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञानमुच्यते ॥
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥

इस्तप्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः ॥

ऐसा गायत्रीका फल निरूपण कर अब इसका जो अर्थ बृहदारण्यकमें लिखाहै वह लिखतेहैं (बृहदारण्यके) भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराणि अष्टाक्षरं हवा एकं गायत्र्यै पदमेतदुहैवास्या एतत् सयावदेषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ १ ॥ ऋचो-यजूंषि सामानि इति अष्टावक्षराणि अष्टाक्षरं वा एकं गायत्र्यै पदमेतदुहैवास्या एतत् स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥२॥ प्राणोऽपानो व्यान (विआनः) इत्यष्टावक्षराणि अष्टा-क्षरं हवा एकं गायत्र्यै पदमेतदुहै वास्या एतत् सयाव-दिदं प्राणिति तद्धे जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ ॥ ३ ॥ अथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजाय एष तपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृशे इव एप परोरजा इति सर्वं ह्येष रज पर्य्युपरि तपति एवं हैष श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ ४ ॥ सैषा गायत्री एतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे परो-रजसि प्रतिष्ठितेत्यादि ॥५॥ एतद्वैतत् सत्यं बले प्रति-ष्ठितं प्राणो वै बलंतत् प्राणे प्रतिष्ठितमित्यादि ॥ साहैषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयास्तान् प्राणांस्तत्रे

यस्माद्गयांस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम ॥ ६ ॥ सयामे वासुमन्वाह वेपसो स यस्मा अन्वाह तस्य प्राणां स्त्रायते ॥ ७ ॥

अथ छांदोग्योपनिषदुक्तगायत्रीव्याख्यालिखते हैं॥ गायत्री वा इदं सर्वंभूतं यदिदंकिञ्च । वाग्वै गायत्री वाग्वा इदं सर्व्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥ यावै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिवी अस्यांहीदं सर्व्वं भूतं प्रतिष्ठितम् एतामेव नातिशीयंते ॥ २॥ यावै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन् पुरुषे शरीरं अस्मिन् हीमे प्राणा प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशयन्ते ॥ ३ ॥ यद्वै तत् पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदम स्मिन्नन्तः पुरुषे हृदमस्मिन् हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिताः एतदेव नाति शीयन्ते ॥ ४ ॥ सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम् ॥ ५ ॥

ऋ० एतावानस्य महिमातोज्यायाँश्च पूरुषः । पादो ऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजुर्वेदमें अध्याय ३१ में एतावान् यह विशेष है ॥

अस्य शांकरभाष्यम् ।

तावान् अस्य गायत्र्याख्यस्य ब्रह्मणः समस्तस्य महिमा विभूतिविस्तारः यावान् चतुष्पाद्षड्विधश्च ब्रह्मणो विकारः पादः गायत्रीति व्याख्यातः । अतस्त

स्माद्विकारलक्षणात् गायत्र्याख्यात् ततो ज्यायान् मह त्तरश्च परमार्थसत्यरूपोऽविकारः पुरुषः सर्वपूरणात् पुरिशयनाच्च ॥ तस्यास्य पादाः सर्वाः सर्वाणि भूतानि तेजोबन्नादीनि सस्थावरजङ्गमानि ॥ त्रिपाद् त्रयः पादा अस्य सोऽयं त्रिपाद् अमृतं पुरुष्याख्यं समस्तस्य गायत्र्यात्मकस्य दिवि द्योतनवति स्वात्मन्यवस्थित मित्यर्थः ॥

अथ महीधरभाष्योक्तगायत्रीका अर्थ लिखते हैं । यजु० अ० महीधरः ॥ तदिति षष्ठ्यर्थे । तस्य द्योतनात्मकस्य सवितुः प्रेरकस्यान्तर्यामिणो विज्ञानानन्दस्वभावस्य हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा आदित्यान्तरपुरुषस्य वा ब्रह्मणो वरेण्यं वरणीयं सर्वैःप्रार्थनीयं भर्गो सर्वपापानां सर्वसंसारस्य च भजनसमर्थं च तेजः सत्यज्ञानादिवेदान्तप्रतिपाद्यं वयं धीमहि ध्यायाम इति महीधरभाष्यम् ॥

तत् यह षष्ठीके अर्थमें है ॥ उस (देव) प्रकाशस्वरूप (सविता) प्रेरक अन्तर्यामि विज्ञान और आनंदस्वभावका अर्थात् हिरण्यगर्भनामसे युक्तका अथवा सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थितपुरुषका अथवा ब्रह्मका(वरेण्य) सर्वसे प्रार्थना करने योग्य (भर्ग) सब पापोंके सब संसारके भूंजनेमें नाशकरनेमें समर्थ तेजको अर्थात्

'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतिसे सिद्धकिये गये को हम ध्यान करते हैं ॥

अथ गायत्रीपर सायनभाष्य लिखते है–

यः सवितादेवः नः अस्माकं धियः धर्मादिविषयाबुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत् तत् तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्य आत्मभूतं वरेण्यं सर्वैरुपास्यतया ज्ञेयतया च सम्भजनीयं भर्गः अविद्या तत् कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः धीमहि ॥

(अर्थ भाषामे)

जो सविता देव हम लोगोंकी बुद्धिको अर्थात् धर्मादिविषयबुद्धिको प्रेरणा करे उस सब श्रुतियोंमें प्रसिद्ध प्रकाशमान सविता अर्थात् सबके अंतर्यामी होकर प्रेरक जगत्के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वरका आत्मस्वरूप वरेण्य अर्थात् सबोंसे उपासना करनेके योग्य और भजन करनेके योग्य भर्गको अर्थात् अविद्या अज्ञान और उसके कार्य संसारके भूंजनेसे नाश करनेसे भर्गपद वाच्य स्वयं प्रकाश परब्रह्मरूप जो तेज उसका ध्यान करताहूं ॥

अथवा ।

यद्वा यः सविता सूर्य्यो धियः । कर्माणि प्रचोदयात्

प्रेरयेत् तस्य सवितुस्सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सर्वैर्दृश्यतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैः संभजनीयं भर्गः पापानां तापकं तेजः धीमहि ध्येयतया मनसा धारयेम ॥ इति माधवाचार्यः ॥

(अर्थ भाषामें ।)

जो (सविता) सूर्य हमलोगोंकी बुद्धि अर्थात् कर्मों को प्रेरणा करे उस (सविता) सबके उत्पन्न करनेवाले (देव) प्रकाशमानका सबको दीख पडताहै उससे प्रसिद्ध (वरेण्य) सबसे भजनकरनेके योग्य (भर्ग) पापोंका नाश करनेवाले तेजका ध्यान करते हैं अर्थात् मन धारण करते हैं ॥

अब श्रीयोगियाज्ञवल्क्यजीने जो गायत्रीका अर्थ लिखाहै सो वह लिखते हैं (तत्) तच्छब्देन तु यच्छब्दो बोद्धव्यः सततं बुधैः । उदाहृते तु यच्छब्दे तच्छब्दः स्यादुदाहृतः (सवितुः) सविता सर्वभूतानां सर्वभावान् प्रसूयते । सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन चोच्यते ॥ (देवस्य) दीव्यते क्रीडते यस्माद्रुच्यते शोभते दिवि । तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः ॥ (प्रचोदयात्) यो नः (भर्गः) चिन्तयामो वयं भर्ग धियो यो नः प्रचोदयात् । धर्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिवृत्तीःपुनः पुनः ॥ (भर्गः) भ्रस्ज् पाके भवेद्धातुर्यस्मात्पा-

चयतेह्यसौ । भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगच्चान्ते हरत्यपि (भर्गः) कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः । भ्राजते तत्स्वरूपेण तस्माद्भर्गः स उच्यते ॥ (भर्गः) भेति भ्राजयते लोकान्रेति रंजयते प्रजाः । गइत्यागच्छ तेऽजस्रं भरगो भर्ग उच्यते ॥ (वरेण्यं) वरेण्यं वरणीयं च जन्मसंसारभीरुभिः । आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः ॥ (धीमहि) जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च । ध्यानेन पुरुषो यस्तु द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले॥

सप्तव्याहृतयः ।

भूराद्याश्चैव सत्यांताः सप्तव्याहृतयस्तथा । लोकास्त एव सप्तैते उपर्युपरि संस्थिताः ॥ सप्तव्याहृतयः प्रोक्ताः पुराकल्पे स्वयंभुवा । ता एव सप्तच्छंदांसि लोकाः सप्त प्रकीर्तिताः ॥

अथ भूराह ।

भवंति चास्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च । तस्माद्भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता (भुवः)॥

अथ भुवराह ।

भवंति भूयो लोकानि उपयोगक्षये पुनः । कल्पन्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात्प्रकीर्तिता ॥ (भुवः) ॥

अथ स्वराह ।

शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायंते तानि वै सदा॥आलयः

सुकृतानां च स्वर्लोकः स उदाहृतः ॥ (स्वः) ॥

अथ महराह ।

अधरोन्तरलोकेभ्यो महांश्च परिमाणतः ।
हृदयंसप्तलोकानां महस्तेन निगद्यते ॥ (महः) ॥

अथ जनमाह ।

कल्पदाहे प्रलीनास्तु प्राणिनस्तु पुनः पुनः ।
जायंते च पुनः स्वर्गे जनस्तेन प्रकीर्तितः ॥ (जनः) ॥

अथ तप आह ।

सनकाद्यास्तपः सिद्धा ये चान्ये ब्रह्मणः सुताः ।
अधिकारनिवृत्तास्तु तिष्ठंत्यस्मिंस्तपस्ततः ॥(तपः) ॥

अथ सत्यमाह ।

सत्यं तु सप्तलोका वै ब्रह्मणः सदनं ततः ॥ सर्वेषां चैव लोकानां मूर्ध्नि सन्तिष्ठते सदा ॥ ज्ञानकर्मप्रतिष्ठानां तथा सत्यस्य भाषणात् । प्राप्यते चोपभोगार्थं प्राप्यं न च्यवते पुनः ॥ तत्सत्यं सप्तमो लोकस्तस्मादूर्ध्वं न विद्यते ॥ (सत्यम्) ॥

अर्थ गायत्रीमंत्रकी व्याख्या यथाबुद्धि वेदवेदांगधर्मशास्त्रादिद्वारा सिद्धकर विनियोगका वर्णनकरते हैं ॥ जिसमंत्रका जपकरनाहो उसका प्रथम ऋषि छंद देवताका यथार्थ ज्ञान चाहिये ॥ प्रमाण. योगियाज्ञवल्क्यका " आर्षं छंदश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च ॥ वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः" ॥ अर्थ--मंत्रका

ऋषि छंद देवता विनियोग यह प्रयत्नसे जानना चाहिये। और ना जाननेमें प्रायश्चित्त लिखाहै "अविदित्वातुयः कुर्याद्याजनाध्यापनं जपम् । होममंतर्जलादीनि तेभ्यो ऽल्पाल्पफलं लभेत्" तथा च कात्यायनः–द्रष्टार ऋषयः स्मर्तारः परमेष्ठ्यादयः; देवतामन्त्रान्तर्भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स्तुतिभाजोवा । छन्दांसि गायत्र्यादीनि। एतान्यविदित्वायोऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजते वा तस्य ब्रह्म निर्वीर्य्यं यातयामं भवत्यन्तरा श्वगर्तं वापद्यते स्थाणुं वर्च्छति प्रमीयते वापापीयान् भवति । इसलिये गायत्रीछंदका ऋषि देवता विनियोग लिखतेहैं ॥ तथा च योगियाज्ञवल्क्यः ॥

सविता देवता तस्या मुखमग्निस्तदित्युत । विश्वामित्रऋषिश्छन्दो गायत्री तु विधीयते ॥ विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः ॥ विनियोगोपनयने प्राणायामे जपे तथा ॥

अर्थ ।

गायत्रीका विश्वामित्र ऋषि सविता देवता अग्नि मुख उपनयनमें विनियुक्त है ॥ श्रीः । अलमतिगाहावगाहेन ॥ श्रीः ॥

एषा व्याख्या तु गायत्र्याः सर्वपापप्रणाशिनी।विज्ञातव्या प्रयत्नेन द्विजैः सर्वशुभेप्सुभिः ॥ जपस्याभ्यंतरे

ख्या स्मर्तव्यामनसा द्विजैः। स्मरणात्सर्वपापानि नश्यंति न संशयः॥ इति॥

अथ माणवक आचार्यदक्षिणदिशि अग्निपश्चिमोपविष्टो घृताक्तशुष्कनिषि क्तैरेंधनेन जुहुयात् ॥ ततः ॐअग्नेसु श्रवः सुश्रवसंमांकुरु ॐयथात्वमग्नेसु श्रवः सुश्रवा असि। ॐएवंमा सुश्रवः सौश्रवसंकुरु ॐयथात्वमग्ने देवानां यज्ञ स्य निधिपोऽअसि। ॐएवमहं मनुष्या णां वेदस्यनिधिपोभूयासम् ॥ ततः प्रद क्षिणमग्निवारिणा पर्युक्ष्य उत्थाय स्वप्रा देशमितांघृताक्तपलाशसमिधमादाय॥ ॐअग्नयेसमिधमाहार्षं बृहतेजातवेदसे यथात्वमग्ने समिधासमिध्यसएवमह मायुषामेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्र- ह्मवर्चसेनसमिंधे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादोभूयासꣳस्वा हा॥ इतिमंत्रेणजुहुयात्॥

अथ गायत्र्युपदेशके अनंतर आचार्यसे दक्षिण अग्निसे पश्चिमस्थित हुआ शिष्य घृतयुक्त शास्त्रविहितगोमय (एरने) से हवन करे [मंत्रार्थ—अग्ने सुश्रव इति] सुश्रव शोभन नाम युक्तहै अग्नि देव (मा मां) मुझको सुश्रव श्रेष्ठकर्णोंवाले करो जैसे तुम सुश्रव हो तद्वत् सुन्दर श्रवणसे उत्पन्न ज्ञानशाली करो। हे भांडागारिके गृहमेधीय अग्ने जैसे तुम यज्ञ संबंधसे इंद्रादि देवताओंके निधिप अर्थात् रक्षक हो(अर्थात् भाण्डागारिकहो) इसीप्रकार (अहं) मैं मनुष्योंका और वेदोंका निधिप रक्षक हूंगा इति ॥ तिसके अनंतर प्रदक्षिण क्रमसे जलसे अग्निको पर्युक्षण कर और उठकर (स्व) अपने प्रादेशमात्र घृतयुक्त समिधा लेकर (अग्नये)इस मंत्रसे हवन करे[मंत्रार्थ—अग्नये इति]हे अग्ने में समिधाको (आहार्षम्) आहृतवानस्मि ग्रहणकर्ता रहै अतिशयसे प्रकाशमान तुम्हारे लिये हे अग्ने जैसे तुम मुझकर दीहुई समिधासे वृद्धिको प्राप्त होतेहो इसी प्रकार मैं आयु(चिरजीवन) मेधा अर्थात् धारणशक्तिवाली बुद्धि (वर्च) तेजसे (प्रजया) प्रजा पुत्रादिसे (पशुभिः) गवादिकोंसे (ब्रह्मवर्चसा) ब्रह्मतेजसे वृद्धिको प्राप्त हूंगा और मुझको गुरुजी बहुत पुत्र बुद्धियुक्त होवें॥ (अहं अनिराकरिष्णुः भवामि) अर्थात् मैं नित्ययज्ञके करनेवाला हूंगा। और मैं यशयुक्त तेज-

वाला वेदाध्ययनशील और (अन्नाद) अर्थात् अन्नके देनेवाला और भोजन करनेवाला हूंगा अर्थात् अन्नका वियोग हमारेको कभी नहो इस कामनासे अग्निके लिये स्वर्गत हो ॥

एवंसमिदंतरद्वयंजुहुयात् ॐ अग्नेसुश्रवः सुश्रवसंमाकुरु ॐ यथात्वमग्नेसुश्रवः सुश्रवाअसि । ॐ एवंमांसुश्रवः सौश्रवसंकुरु । ॐ यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्यनिधिपोऽअसि । ॐ एवमहंमनुष्याणां वेदस्यनिधिपोभूयासम् । ततःप्रदक्षिणमग्निंपर्युक्ष्यतूष्णीं पाणी प्रतप्य मुखंप्रतिमंत्रांतेऽवमृशति॥ ॐतनूपाअग्नेसि तन्वंमे पाहि । ॐआयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि । ॐवर्चोदाअग्नेसिवर्चोमेदेहि । ॐ अग्नेयन्मेतन्वाऊनं तन्म आपृण । ॐमेधांमेदेवः सविता आदधातु । ॐमेधांमे देवीसरस्वतीआदधातु । ॐमेधामश्विनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजौ । ततः सर्वगात्रादिषु दक्षिणपाणिनास्पर्शः ॥

इसी प्रकार दोसमिधाका हवन करे ॥ अग्ने सुश्रवः इस मंत्रका पूर्व अर्थ लिखाहै ॥ तदनंतर प्रदक्षिण क्रमसे अग्नि पर्युक्षणकर तृष्णीं हो हाथको तपाय मंत्र के अनंतर स्पर्शकरे ॥ (मंत्रार्थ तनूपा इत्यादि) हे अग्ने ! तुम तनु-शरीरके रक्षक हो इसलिये हमारे शरीरकी रक्षा करो अर्थात पुष्टि करो हे अग्ने आयुके तुम दाता हो इसलिये आयुकी वृद्धि करो हे अग्ने वर्च तेजके दाता तुम तेजको देवो ॥ हे अग्ने जो मेरे शरीरमें ऊन (न्यून) है वह पूर्ण करो ॥ धारणशक्ति वाली बुद्धि(सविता) सूर्य मुझको देवे । सरस्वती वाग-धिष्ठात्री देवता बुद्धिको देवे ॥ कमलोंकी मालावाले अश्विनी कुमार बुद्धिको देवें ॥ तदनंतर अंगोंको दक्षिण हाथसे स्पर्श करना क्रमसे ॥

ॐअंगानिचम आप्यायताम् ॥इतिसर्व गात्रालंभने ॐवाक्चम आप्यायतामि तिमुखे॥ॐप्राणश्चम आप्यायतामिति नासिकयोः ॥ ॐचक्षुश्चम आप्यायता मिति मंत्रपाठमात्रम्॥ततोदक्षिणकराना मिकाग्रगृहीतभस्मना ललाटग्रीवायांद क्षिणबाहुमूलेहृदिच्यायुषंकुर्य्यात् ॥ मंत्रोयथा-ॐ त्र्यायुषंजमदग्नेः-इतिल

लाटे। ॐकश्यपस्यत्र्यायुषमितिग्रीवायाम्। ॐयद्देवेषुत्र्यायुषं-इतिदक्षिणबाहुमूले।ॐतन्नोऽअस्तुत्र्यायुषम्-इतिहृदये॥ततोव्यस्तपाणिभ्यां पृथिवींस्पृशन्नभिवादनंकुर्यात॥तत्रप्रकारः॥ ॐअमुकगोत्रोहममुकशर्माहंभोवैश्वानर त्वामभिवादये॥ ततस्तेनैवक्रमेणसंबोध्यवरुणमभिवाद्याचार्यंतथैवाभिवादयेत्। ततःआयुष्मान्भवसौम्येत्याचार्योब्रूयात्॥

अंगानि शरीरके अंग और वाक् वाणीका कारक इंद्रिय प्राण वायु चक्षु नेत्र श्रोत्र कर्ण यश बलमें मेरे वृद्धिको प्राप्त होवें॥ इन मंत्रसे सर्व शरीर १ मुख २ नासिका ३ चक्षु ४ श्रोत्र-कर्ण ५ स्पर्श करने यशो बलं यह केवल उच्चारणमात्रहै॥ तदनंतर दक्षिण हस्तकी अनामिकासे हवनकी भस्म ले प्रथम ललाट फिर ग्रीवा और दक्षिण अंशमें त्र्यायुषं इस मंत्रसे लगावे [मंत्रार्थ-त्र्यायुषमिति]त्रिआयुकी ऐक्यताकोत्र्यायुष-कहाहै वह त्र्यायुष अर्थात् कल्याणदायकशुभसूचक जो जमदग्निनाम ऋषिको और कश्यपजीको और इंद्रादिक देवताओंको होती भई वह त्र्यायुष मुझको होवे इति तदनंतर व्यस्त (उलटे) हाथोंसे पृथिवीको स्पर्श

करताहुआ अभिवादन करे–कि, अमुकगोत्र अमुक प्रवर अमुक शर्मा मैं हे वैश्वानर अग्ने तुमको अभिवादन करताहूँ इसीप्रकार वरुण (जलाधिष्ठातृदेवता) को तदनंतर गुरुजीको प्लुतउच्चारणसे अभिवादन करे । आयुवाला हो यह गुरु आशीर्वाद कहे ॥

ततोभिक्षापात्रमादाय प्रथमं मातुःसकाशात् ॐभवति भिक्षां मे देहि–इतिप्रार्थनानंतरं तद्दत्तां चादायाचार्याय निवेदयेत् तथैव भिक्षांतरं याचयेत् । तत आचार्येण भुंक्ष्वेत्यनुज्ञातो भिक्षां स्वीकुर्यात् । ततः फलपुष्पचंदनघृतपूर्णस्रुवेण ब्रह्मचारिदक्षिणकरस्पृष्टेनाचार्यः पूर्णाहुतिं दद्यात् ॥ तत्रमंत्रः ॥ (यजु० अध्याय ७ मंत्र २४) ॐ मूर्द्धानंदिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविꣳसम्राजमतिथिंजनानामासन्नापात्रं जनयंत देवाः स्वाहा–इदमग्नये० ततः स्रुवेणभस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना (१) ॐ त्र्यायु

पंजमदंग्नेःइतिललाटे—ॐकश्यपस्य त्र्या
युषम्-इतिग्रीवायाम्।ॐयद्देवेषु त्र्यायुषम्
इति दक्षिणबाहुमूले।ॐ तन्नोऽअस्तुत्र्या
युषम् । इतिहृदि । कुमारपक्षे तन्नो इत्य
स्य स्थाने तत्तेइतिविशेषः ॥ अथक्षार
लवणमधुमांसादिनिवृत्तिः । उद्धृतजल
स्नानदंडकृष्णाजिनधारणवृक्षारोहणवि
षमभूमिलंघननग्नस्त्रीनिरीक्षणस्त्रीसंभोग
व्यसनव्यावृत्तिरूपा ब्रह्मचारिणो निय-
माःतद्दिनेवाग्यतो ब्रह्मचारी अहः शेषं
स्थित एव गमयेत् । ततः सायंसंध्यां
कृत्वा तस्मिन्नेवाग्नौ पूर्ववत् पर्युक्षणपरि
समूहने कृत्वा वाचं विसृजेत्। परिसमू
हनांते शुष्कनिषिद्धेतरेंधनस्याग्नौप्रक्षे
पः । ततः संध्यामुपास्य प्रतिदिनं सायं
प्रातरपि ब्रह्मचारिणा कर्तव्या इति ॥

तदनंतर भिक्षापात्रको ग्रहण कर प्रथम मातासे ब्रह्मचारी भिक्षा लेवे । तदनंतर अन्यस्त्रियोंसे ॥ यदि ब्राह्मण ब्रह्मचारी हो तो (भवति भिक्षां देहि)

यह कहे अर्थात भवत् शब्दको प्रथम कहै । यदि क्षत्रिय. ब्रह्मचारी हो तो (भिक्षां भवति देहि) यह कहे. अर्थात् भवति शब्द मध्यमें कहे । यदि वैश्य ब्रह्मचारीहो तो (भिक्षां देहि भवति) यहकहे अर्थात् भवति शब्द अंतमें कहे ॥ प्रमा०.भी यथा गृह्य सूत्र २ कांडमें-(भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत् भवन्मध्यां राजन्यो भवदन्त्यां वैश्य इति)और याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय प्रथममें लिखाहै ॥ "आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् । ब्राह्मणेषु चरेत् भैक्ष्यमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये " अर्थ-आदिमध्यअंतमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भवत् शब्दको देकर ब्रह्मचारी भिक्षाकरे अनिन्द्य ब्राह्मणोंके गृहोंसे ॥ अपनी अन्नपूर्तिकेलिये प्रथम भिक्षा लेकर गुरुजीके आगे धरदे ॥ तदनंतर गुरुजीकी आज्ञासे भिक्षाको ग्रहण करे॥इसमें प्रमाण याज्ञवल्क्य-स्मृति अध्याय १ प्रथम-यथा- " कृताग्निकार्यो भुंजीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया" अर्थात् हवन कर गुरुकी आज्ञा ले तूष्णीं होकर भोजन करे॥ तदनंतर फल पुष्प चंदन घृतसे पूर्ण ब्रह्मचारीका दक्षिण हाथ अपने हाथसे स्पर्शकर स्रुवसे आचार्य पूर्णाहुतिको हवन करताहै मूर्धानं इस मंत्रसे (मंत्रार्थ मूर्द्धानमिति) इस मंत्रका भरद्वाज ऋषि वैश्वानर

देवता त्रिष्टुप् छंद पूर्णाहुतिके होममें विनियुक्तहै ॥ अर्थ-स्वर्गादि लोकसे ऊपर पृथिव्यादि पांचभूत अर्थात् पृथिवी--अप-तेज-वायु-आकाश-इनसे विरक्त ब्रह्माण्डको प्रकाश करनेवाला ईश्वर सत्यरूप जन्मादि षड्भावरहित निर्विकार, प्रकाशमान सर्वज्ञ परमानंद तीन कालसे रहित सृष्टि-(उत्पत्ति) लयमें प्राणिमात्रका पात्रभूत और जो देवताओंको उत्पन्न कर अपने २ व्यापारमें लगाताहै तिस परमेश्वरके लिये यह आहुति सुहुत हो ॥ तदनंतर बैठकर स्रुवसे भस्मको ले दक्षिण अनामिकासे ललाट १ ग्रीवा २ दक्षिण बाहु ३ हृदयमें आचार्य लगाकर पीछेसे यथा-क्रम शिष्यके (त्र्यायुपं) इस मंत्रसे लगावे॥ तन्नो इसके स्थानमें तत्ते यह कहना ॥

इसके अनंतर ब्रह्मचारी क्षार (खारीवस्तु) लवण मधु (शहद) मांसकी निवृत्ति आदिशब्दसे करे अंजन (सुरमा) उच्छिष्ट--शुक्त (बासा अन्न) स्त्री संभोग, हिंसा, निंदा विवाद--और उदयास्तकालमें सूर्यका अवलोकन छोडदे ॥ प्रमाण. याज्ञ० स्मृ०अ--० १ ''मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरीवादादि वर्जयेत्--'' और निकालकर जलसे स्नानकरना दण्ड मृगचर्म धारणकरना । वृक्षपर नहीं चढना । विषमकठिनभूमिका लंघन, नग्न-

स्त्रीका दर्शन, स्त्रीसे विषयव्यसन द्यूत चोरी आदि ब्रह्मचारीत्यागदे। प्रमाण- याज्ञ॰स्मृ॰अध्याय १-प्रथम --श्लो॰--३२। ३३। ३४। ३५। ३६। ३७। ३८। ३९। ४०। पर्यंत--यथा " न संशयं प्रपद्येत नाकस्मादप्रियं वदेत् । नाहितं नानृतं चैव नस्तेनः स्यान्नवार्धुषी ॥ दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान्सकमण्डलुः । कुर्यात्प्रदक्षिणं देवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् ॥ नतुमेहेन्नदीच्छायावर्त्मगोष्टांबुभस्मसु । नप्रत्यग्न्यर्कगोसोमसंध्यांबुस्त्रीद्विजन्मनः ॥ नेक्षेतार्कं न नग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम् ॥ नच मूत्रं पुरीषं वा नाशुची राहुतारकाः ॥ अयंमेवज्रइत्येवं सर्वं मंत्रमुदीरयेत् ॥ वर्षत्यप्रावृतोगच्छेत् स्वपेत्प्रत्यक्शिरा न च॥ष्टीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सु न निक्षिपेत् । पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ नचैनमभिलंघयेत्॥जलं पिबेन्नांजलिना शयानं न प्रबोधयेत् । नाक्षैः क्रीडेन्नधर्मघ्नैर्व्याधितैर्वा न संविशेत् ॥ विरुद्धं वर्जयेत्कर्म प्रेतधूमं नदीतरम् । केशभस्मतुषांगारकपालेषुचसंस्थितिम् । नाचक्षीत धयन्तीं गां नाद्वारेण विशेत्कचित् । न राज्ञः प्रतिगृह्णीयात् लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ इति ॥ तिस दिनका शेषभाग वाणीका संयम कर व्यतीत करे फिर सायंकालकी संध्याकर उस अग्निमें पूर्ववत् पर्युक्षणादिकर वाणीको त्याग न करे ॥ ब्रह्मचारिको प्रथम संध्या सायंकालकी आती है वह-

करे [प्रमाण–या० स्मृ० अ० १] (उपास्य पश्चिमां संध्यां हुत्वाग्नींस्तानुपास्यचेति) परिसमूहनके अंतमें श्रेष्ठ काष्ठ वा गोमयका अग्निमें प्रक्षेप करना ॥ इसप्रकार सायं प्रातः कालकी प्रतिदिन ब्रह्मचारीने संध्या करनी अवश्य है ॥ संध्याके नकरनेका दोष व्यासस्मृतिमें लिखाहै ॥ संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥ तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं संध्योपासन मुत्तमम् । तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारीभवेन्न हि ॥

अन्यच्च ।

नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्म्मणः ॥ यथा पशुर्भारवाही न तस्य भजते फलम् । द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेदफलमश्नुते॥ इति॥इसलियेब्राह्मणक्षत्रियवैश्य ब्रह्मचारिगृहस्थीवानप्रस्थीको संध्या सायंप्रातः अवश्य करनी चाहिये ॥ अन्यथा अतिदोषभाग होताहै॥ इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासी; गौतमगोत्र(शोरि) अन्वयालंकृतश्रीदेवज्ञ–दुनिचंद्रात्मज–पंडितविष्णुदत्तकृता भाषाटीका समाप्ता ॥

(इति द्वितीयं प्रकरणम्)

ॐस्वस्तिश्रीगणेशायनमः ।

अथ वेदारम्भः ।

तृतीयप्रकरणम् ३.

तत्र कृतनित्यक्रियः आचार्यः कुशैर्हस्तप रिमितां भूमिं परिसमुह्य तान्कुशानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुव मूलेन (स्फ्येन वा) उत्तरोत्तरतः प्राग ग्रप्रादेशमात्रं त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमे णानामिकांगुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेना भ्युक्ष्य कांस्यपात्रेणाग्निमादाय स्वाभिमु खंनिदध्यात् ॥ पुष्पचंदनतांबूलवस्त्राण्या दाय ॥ ॐ अद्यकर्तव्यवेदारंभहोम कर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमे भिः पुष्पचंदनतांबूलवासोभिर्ब्रह्मत्वे नत्वामहंवृणे । इति ब्रह्माणं वृणुयात् । ॐ वृतोस्मीति प्रतिवचनम् ॥ ॐ यथा विहितं कर्म कुर्वित्याचार्यः करवाणीति तेनोक्ते अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा

तदुपरिप्रागग्रान्कुशानास्तीर्य ब्रह्माणम
ग्निप्रदक्षिणक्रमेण भ्रामयित्वा अस्मि
न्कर्मणित्वंमे ब्रह्माभवेत्यभिधाय ॥ ॐ
भवानीति तेनोक्ते ब्रह्माणमुदङ्मुखंतत्रो
पवेश्य प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा
परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमव
लोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ॥
ततः परिस्तरणं बर्हिषश्चतुर्थभागमादा
य आग्नेय्यादीशानांतं ब्रह्मणोऽग्निपर्य
तं नैर्ऋत्याद्वायव्यांतमग्नितः प्रणीताप
र्यंतं ततोग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्र
च्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं सा
ग्रमनंतर्गर्भकुशपत्रद्वयम् । प्रोक्षणीपात्रम् ।
आज्यस्थाली । संमार्जनकुशाः । समिध
स्तिस्रः । स्रुवः आज्यं । पूर्णपात्रं पवित्र
च्छेदनकुशानांपूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनी
यम्॥ततः पवित्रच्छेदनकुशैःपवित्रेछित्त्वास
पवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे
निधाय । द्वाभ्यामनामिकांगुष्ठाभ्या

मुत्तराग्रेपवित्रेगृहीत्वा । त्रिरुत्पवनम् । त-
तः प्रोक्षणीपात्रं वामहस्ते गृहीत्वा दक्षि-
णहस्तानामिकांगुष्ठाभ्यां त्रिरुद्दिंगनम् ।
ततःप्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रमभ्युक्ष्य
प्रोक्षणीजलेनयथासादितवस्तुसेचनंकृ
त्वा अग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं
निदध्यात् ॥ ततआज्यस्थाल्यामाज्यं
निरूप्याधिश्रपणम् । ततःकुशंप्रज्वाल्या
ज्यस्याग्नेश्चोपरि प्रदक्षिणंभ्रामयित्वाअ
ग्नौतत्प्रक्षेपः । ततस्त्रिः स्रुवप्रतपनं संमा
र्जनकुशानामग्रैरंतरतोमूलैर्बाह्यतः स्रुवं
संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्यपुनस्त्रिः प्र
तप्य दक्षिणतो निदध्यात् । तत आज्यम
ग्निप्रदक्षिणंभ्रामयित्वाऽवतार्याग्रेनिदध्या
त् । ततः आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम् अवे
क्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं । ततः प्रोक्षणी
वदुत्पवनम् अवेक्ष्य सत्यपिद्रव्ये तन्निर
सनं ततः प्रोक्षण्युत्पवनम् । तत उत्थायो
पयमनकुशानादाय प्रजापतिं मनसा

ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रः क्षिपेत्। ततउपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निं पर्युक्ष्यप्रणीतापात्रे पवित्रे निधायब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुःसमिद्धतमेग्नौजुहुयात् तत्र प्रथमाहुतिचतुष्टयेनस्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रेप्रक्षेपः ॥ ॐप्रजापतयेस्वाहा-इदंप्रजापतये । इतिमनसा ॥ ॐइंद्रायस्वाहा—इदमिंद्राय इत्याघारौॐअग्नयेस्वाहा । इदमग्नये ।ॐसोमायस्वाहा—इदं सोमाय ॥इत्याज्यभागौ॥ततःप्राकृतोऽनन्वारब्धकर्तृकोहोमः ॥

कृतनित्यक्रिय आचार्य इति। अर्थात् नित्यक्रिया जो प्रतिदिनकर्तव्य संध्योपासनादि वह जिसने किये हैं ऐसा आचार्य शिष्यको वेदारंभ अर्थात् वेदका अध्ययन करवावे । नित्य कर्मोंमें प्रमाण यथा पाराशरी धर्मस्मृति अध्याय०॥संध्या स्नानं जपो होमो देवतानाञ्च ह्यर्चनम्। स्वाध्यायं वैश्वदेवं च पट् कर्माणि दिनेदिने ॥ अर्थ-संध्या स्नान १ जप २ होम ३ देवपूजा ४ स्वाध्याय वेदका प्रतिदिन अभ्यास५वैश्वदेवबलि६यह

पट्कर्म प्रति दिन कर्तव्यहै ॥ और कुशकंडिकाका अर्थ प्रथम लिख चुकेहैं इसलिये फिर पिष्टपेषण नहीं करते और जो विशेषहैं वह लिखतेहैं॥ ब्रह्माकी वर्णीके संकल्पमें इस स्थान (वेदारंभहोमकर्मणि) यह (पद कहना ॥ अघार आहुति वेदिके वायव्य (वायु) को णसे अग्निकोणपर्यंत स्रुवसे आहुति देणि इसको आघार कहतेहैं ॥ और आज्यभाग नैर्ऋतवेदिके को- णसे ईशानकोणपर्यंत स्रुवसे घृतकी आहुतिको आज्य भाग कहतेहैं ॥ इनके अनंतर विना अन्वारब्धके होम करना चाहिये छंदोभ्यः स्वाहेति और कुशकंडिका सर्वत्र एकसी होतीहै इसमेंप्रमाण गृह्यसूत्र प्रथम कां- डमें (एषएव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः) अर्थ-यहां कहां होम हो वहां यही विधि जाननी ॥

ॐअंतरिक्षायस्वाहा-इदमन्तरिक्षाय॥ ॐवायवे स्वाहा-इदं वायवे । ॐब्रह्मणे स्वाहा-इदंब्रह्मणे । ॐ छंदोभ्यः स्वाहा इदंछंदोभ्यः ॥ एताः सामा न्याहुतयः ॥ ॐ प्रजापतयेस्वा- हा-इदंप्रजापतये॥इतिमनसा । ॐ देवे- भ्यः स्वाहा ।इदंदेवेभ्यः । ॐ ऋषिभ्यः

स्वाहा-इदंऋषिभ्यः।ॐ श्रद्धायै स्वाहा इदंश्रद्धायै। ॐ मेधायैस्वाहा-इदंमेधायै।ॐसदसस्पतयेस्वाहा-इदंसदसस्पतये।ॐअनुमतयेस्वाहा--इदमनुमतये॥ ततोऽन्वारब्धकर्तृको होमः॥ तत्तदाहुत्यनंतरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रेप्रक्षेपः।ॐभूः स्वाहा-इदमग्नये।ॐभुवः स्वाहा-इदंवायवे।ॐ स्वः स्वाहा-इदंसूर्याय॥ एतामहाव्याहृतयः॥यजुः०अ० २१ मंत्र-३॥ ॐ त्वन्नो अग्नेवरुणस्य विद्वान्देवस्यहेडो अवं यासिसीष्ठाः। यजिष्ठोवह्नितमः शोशुचानोविश्वाद्वेषांᳬसिप्रमुमुग्ध्यस्म त्स्वाहा--इदमग्नीवरुणाभ्याम्॥

१अंतरिक्ष (आकाश)२ वायु ३ ब्रह्म छन्द (वेद) ४ ऋग् यजु सामाथर्वण॥ यह सामान्य आहुतिहैं ॐ प्रजापतये यह मनसे कहना॥ और देव ऋषि--श्रद्धा मेधा (धारणावती बुद्धि) सदसस्पति अनुमति यह आहुति विना अन्वारब्धके हवन करना॥ भूः इसका

अग्नि, अधिष्ठातृदेवता । भुवका वायु । स्वःका सूर्य देवताहैं । त्वन्नो अग्ने इस मंत्रके साथ विनियोगके अर्थ पीछे लिखाहै इसलिये कुशकंडिकाके मंत्र सत्वन्न इमंमे वरुण तत्त्वायामि येतेशतं अयाश्चाग्ने उदुत्तमं भवतन्नः॥ इनकाभी अर्थ पूर्वोक्त जानना ॥

ॐसत्वनो अग्नेवमोभवोतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउपसोव्व्युष्टौ।अवयक्ष्वनोवरुणꣳरराणोव्वीहिमृडीकꣳसुहवा नएधिस्वाहा॥इदमग्नीवरुणाभ्याम्॥ ॐअयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्चसत्यमित्वमयाअसि। अयानोयज्ञंवहास्ययानोधेहिभेषजꣳस्वाहा इदमग्नये॥ॐयेतेशतंवरुणयेसहस्रंयज्ञियाः पाशावितताम‌हान्तः। तेभिर्नोअद्यसवितोतविष्णुर्विश्वेमुंचन्तुमरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥इदंवरुणायसवित्रेविष्णवेविश्वेभ्योदेवेभ्योमरुद्भ्यःस्वर्केभ्यश्च०॥ ॐउदुत्तमंवरुणपाशमस्मदवाधमंविमध्यमꣳश्रंथाय । अथाव्वयमादित्यव्व्रत

१ यह मंत्र यजु० अ० २ मंत्र १२ है।

तेत्वानागसोऽअदितयेस्यामस्वाहा ॥
इदंवरुणाय०॥इतिसर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः
॥ ॐ प्रजापतयेस्वाहा-इदंप्रजापतये० ।
इतिमनसा॥इतिप्राजापत्यम्॥ ॐअग्नये
स्विष्टकृतेस्वाहा।इदमग्नयेस्विष्टकृते० ॥
इतिस्विष्टकृद्धोमः॥ततःसंस्रवप्राशनम्॥
ततआचम्यॐअद्यकृतैतद्वेदारंभहोमक
र्मणिकृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रति
ष्ठार्थमिदंपूर्णपात्रं प्रजापतिदैवत्यममुक
गोत्रायामुकशर्मणेब्राह्मणायब्रह्मणेतुभ्य
महंसंप्रददे ॥ इति दक्षिणांदद्यात् ॥
स्वस्तीतिप्रतिवचनम् ॥

संस्रवप्राशन (अर्थात् स्रुवसे च्युत घृतका प्राश-
न जो प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षिप्तहै) ब्रह्माकी दक्षिणाके
संकल्पमें (वेदारंभहोमकर्मणि) यह विशेष है ॥ और
पूर्ववतहै ॥ स्वस्तिहो यह ब्रह्माजी कहे ॥

ततोब्रह्मग्रंथिविमोकः ॥ ॐ सुमित्रिया
नऽआपओषधयः सन्तु । इतिपवित्राभ्यां

प्रणीताजलमानीयतेनशिरः संमृज्य ॐ दुर्मित्रियास्तस्मैसंतुयोऽस्मान्द्वेष्टि यंचव यंद्विष्मः ॥ इतिमंत्रेणऐशान्यां प्रणीतांन्यु ब्जीकुर्यात् । ततस्तरणक्रमेणबर्हिः आनी यघृतेनाभिघार्य क्रमेण हस्तेनैवजुहुयात ॐदेवागातुविदोगातुंवित्वागातु मितम नसस्पतइमंदेवयज्ञᳲस्वाहावातेधाः स्वा- हा ॥ इतिबर्हिर्होमः ॥ ततः काश्मीरग मनम् । तत इष्टांशकेवेदारंभं गुरुः कार येत् ॥ तत्रक्रमः ॥ ॐभूर्भुवः स्वः । तत्सवि तुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहि । धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ ॐइतिप्रणवांतंपठित्वा ॥ पंक्तिनमस्कारंचकारयित्वा ॥ ॐस मिधाग्निंदुवस्यतघृतैर्बोधयतातिथिम् । अस्मिन्हव्याजुहोतन ॥ सुसमिद्धाय शोचिषेघृततीव्रंजुहोतन । इतिकंडिकांतरं वा फक्किकांतरं वा पाठयेत् ॥

ब्रह्मग्रंथिविमोक वहांहै यहां साक्षात् वेदकर्मप्रवीणश्रो त्रिय ब्राह्मण नहो वहां कुशाका ब्रह्मा बनाकर उसमें ब्रह्मा

जीका आवाहनध्यान करना॥उस स्थान कुशाके ब्रह्मा की ग्रंथिका मोचन करना (यथा-प्रमाण-पंचाशता भवेत् ब्रह्मा) अर्थात् ब्राह्मणके अभावमें पचासकुशोंका ब्रह्मा बनाना। वेदारंभ प्रथम ओंकार सप्तव्याहृति पूर्वक गाय त्रीमंत्र पढ समिधाग्निं-इषेत्वोर्जेत्वा-अग्निमीळे पुरोहितं शन्नोदेवी इत्यादि कण्डिकापर्यंत वा फक्किकापर्यंत प्रथम पढ पीछेसे चार वेद वा एक वेद अपनी शाखा अवश्य पढे॥ प्रमाण-याज्ञ० स्मृतिः अध्याय-१-(उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्याप येदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥) अर्थ-गुरु शिष्यको यज्ञोपवीतधारणकरवाय महाव्याहृतिपूर्वक वेद पढा वे और शौच (पवित्रता) अचारकी शिक्षा करे॥

ततः सप्रणवं स्वस्ति वाचयित्वा उत्था य फलपुष्पसमन्वितब्रह्मचारिदक्षिणकर स्पृष्टेन घृतपूर्णेन पूर्णाहुतिं दद्यात्। ॐ मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्यावैश्वानर मृतऽआजातमग्निम्। कविꣳसम्राजमति थिंजनानामासन्नापात्रंजनयंतदेवाः। इति पूर्णाहुतिः॥ ततः उपविश्य स्रुवेणभस्मा नीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना

त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे । कश्य
पस्य त्र्यायुषं इतिग्रीवायाम् । ॐयद्देवेषु
त्र्यायुषं इति दक्षिणबाहुमूले ॥ ॐतन्नो
अस्तुत्र्यायुषं इतिहृदि । अनेनैव क्रमेण
ब्रह्मचारिललाटादावपि तत्र तत्ते इति
विशेषः ॥ इतिवेदारंभः ॥

ॐस्वस्ति यह कहवाकर ब्रह्मचारिके दक्षिणहस्त
का स्पर्शपूर्वक आचार्य पूर्णाहुति देवे (पूर्णाहुतिमुत्त-
मांजुहोति) इस श्रुति प्रमाणसे ॥ और मूर्द्धानंदिवः ॥
त्र्यायुषं जमदग्ने इत्यादिके पीछे कुशकंडिकामें अति
विस्तारसे अर्थ लिखाहै वहांसे समझना चाहिये ॥
विस्तारके भयसे वारंवार नहीं लिखते ॥

इति श्रीकर्पूरस्थलनिवासिगौतमगोत्र (शोरी) अन्व
यालंकृतदैवज्ञदुनिचंद्रात्मजश्रीयुतपण्डित–विष्णुदत्त-
कृता वेदारंभटीका समाप्ता ॥ शुभमस्तु ॥

(इति तृतीयं प्रकरणं समाप्तम्)

(अथ चतुर्थप्रकरणं प्रारभ्यते) ।

अथसमावर्तनम् ॥ तत्रशुभेदिने प्रह्वी
भूय आचार्य स्नास्यामीति कुमार आ
चार्यं भाषते तत्रस्नाहीत्याचार्यः ततो
ब्रह्मचारिणि आचार्यसन्निहितदक्षिण
दिशि उपविष्टे कृतस्नानादिराचार्यः ॥

वेदारंभके अनंतर समावर्तनसंस्कार लिखते हैं ॥ तत्रेति ॥ समावर्तनसंस्कार उसको कहा जाताहै कि जो वेदोंको और ब्रह्मचर्यको संपूर्ण पीछेसे गुरुजीकी आज्ञाकर गृहस्थ आश्रममें आनेके लिये जो स्नान कियाजाय ॥ इस लिये ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वण वेदके पढनेकी और ब्रह्मचर्य धारणकी अवधि कहतेहैं कि जैसे-गृह्यसूत्र पारस्कर कांड--२-अष्टचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत् द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदं यावद्ग्रहणंवेति । अर्थ-अठतालीस ४८ वर्ष वेद और ब्रह्मचर्यको आचरण करे वा एक वेद प्रति द्वादश १२ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करे वा ग्रहणांतिक अर्थात् जबतक वेद पढाजाय उतना चिर ब्रह्मचर्य धारण करे ॥ और मनुजी भी लिखतेहैं । मनुः-षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् । तदर्द्धिकं पादिकं वा ग्रहणांतिकमेववा--इति ॥ तथा-याज्ञवल्क्यस्मृति

अध्याय १ प्रथम स्मृति यथा--प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पंच वा । ग्रहणांतिकमित्येके केशांतश्चैव षोडशे ॥ अर्थ- एकवेद प्रति द्वादश १२ वर्ष ब्रह्मचर्य करे वा पंच वा ग्रहणांतिक अर्थात् जबतक वेदकी समाप्ति नहो॥और स्नातक तीन प्रकारके होतेहैं एक विद्यास्नातक द्वितीय (दूसरे) व्रतस्नातक तृतीय (तीसरे) विद्याव्रतस्नातक ॥ विद्यास्नातक वह होता है जो वेदोंको पढ शीघ्र तीक्ष्ण बुद्धिद्वारा ब्रह्मचर्यको न पूरण कर जो स्नान करे अर्थात् समावर्तन संस्कार कर गृहस्थाश्रममें प्राप्त होजावे॥ व्रतस्नातक वह है जो केवल व्रत (ब्रह्मचर्य ही) पूरणकर स्नान करे और वेदकी समाप्ति नाकरे॥विद्याव्रतस्नातक वह है जो वेद और ब्रह्मचर्यको समाप्त कर स्नानकरे-प्रमाण-गृह्यसूत्र पारस्कर २-कांडमें-त्रयः स्नातका भवंति । विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति । समाप्य वेदमसमाप्य तं यः समावर्तते स विद्यास्नातकः समाप्य व्रतमसमाप्य दं समावर्तते स व्रतस्नातक उभय ँ समाप्य यः समावर्तते स विद्याव्रतस्नातक इति ॥ ॥ यदि समग्र चार वेद नापढे जांय तो अपनी शाखाका वेद पढे यदि वह भी पढा ना जा तो संहिता मात्र पढे । यदि इसमें भी असमर्थ होतो संस्कार संध्या अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय

वैश्यको जो अवश्य कर्तव्य हैं वह तो यत्नसे पढना चाहिये ॥ यह गौण पक्ष है॥ (तत्रेति) वेदादि पढ शुभ-दिनमें (स्नास्ये भूय-) हे गुरो में स्नान करों भो शिष्य स्नानकर इस वाक्यके अनंतर आचार्यकी दक्षिणकोणमें स्थित हो स्नान करे। प्रमाण–याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ प्रथम--(गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया । वेद व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा) इति ॥

कुशैर्हस्तमात्रां भूमिं परिसमुह्य तानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेन स्फ्येन वोत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणोद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य कांस्येनाग्निमानीयप्रत्यङ्मुखं निदध्यात् । ततःपुष्पचंदनतांबूलवासांस्यादाय ॐ अद्यामुकस्य कर्तव्यसमावर्तनहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणंब्राह्मणमेभिः पुष्पचंदनतांबूलवासोभिः ब्रह्मत्वेनत्वामहं वृणे।वृतोस्मीतिप्रतिवचनम्॥ यथाविहितं कर्मकुर्वित्याधाय । ॐ

करवाणीतितेनोक्ते अग्नेर्दक्षिणतः शुद्ध मासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान् कुशा नास्तीर्य अस्मिन्कर्मणि त्वं मे ब्रह्माभ वेत्यभिधाय ॐ भवानीति तेनोक्ते ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्यततः प्रणी. तापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याऽ ग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ॥

कुशकंडिकाका अर्थ पूर्व लिखाहै ॥ ब्रह्माकी वर्णीमें (अस्य कुमारस्य समावर्तनहोमकर्मणि) यह कहना ॥ प्रणीतापात्रका लक्षण लिखतेहैं ॥ वरण वृक्षका द्वादश (१२) अंगुल दीर्घ और चार अंगुल विस्तारमें खोदा हुआ प्रणीतापात्र होताहै ॥

ततः परिस्तरणम् । बर्हिषश्चतुर्थभागमा दायाग्नेयादीशानांतंब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नै ऋत्याद्वायव्यांतं अग्नितः प्रणीतापर्यंतं ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशिपवित्रच्छे दनार्थं कुशत्रयम् । पवित्रकरणार्थंसाग्र मनन्तर्गर्भकुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रमाज्य

स्थालीसंमार्जनार्थं कुशाः उपयमन कुशाः समिधस्तिस्रः स्रुवःआज्यं पूर्व पूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम्। ततःपवित्र च्छेदनकुशैः पवित्रेछित्त्वासपवित्रकरेण प्रणीतोदकंत्रिः प्रोक्षणीपात्रेनिधायाना मिकांगुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वात्रिरुत्पूय प्रोक्षणीपात्रंवामकरेणाऽदायाऽनामिकां गुष्ठगृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किंचित्त्रिः प्रक्षिप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीमभ्युक्ष्य प्रोक्षणीजलेनयथासादितवस्तून्यभिषि च्याग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रंनिद ध्यात् ॥ ततआज्यस्थाल्यामाज्यनि र्वापः ॥ अधिश्रपणम्॥ ततस्तृणं प्रज्वा ल्याज्यस्याग्नेश्चोपरि प्रदक्षिणं भ्राम यित्वा वह्नौ तत्प्रक्षिप्यस्रुवं त्रिः प्रतप्य संमार्जनकुशानामग्रैरंतरतोमूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्वस्य दक्षिणतो निदध्यात् । तत आज्यमग्नि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वाऽ

वतार्यत्रिःप्रोक्षणीवदुत्पूयावेक्ष्य सत्यप द्रव्ये तन्निरसनं कृत्वापुनः पूर्ववत्प्रोक्षण्यु त्पवनं ततउत्थायोपयमनकुशान् वाम हस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रःक्षिपे त। तत उपविश्यसपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निपर्युक्ष्यप्रणीतापात्रेनि धाय पातितदक्षिणजानुः समिद्धतमेऽ ग्नौब्रह्मणान्वारब्धः स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहु यात्। तत्रप्रथमाहुतिचतुष्टये प्रत्याहुत्य नन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्यप्रोक्षणीपा त्रे प्रक्षेपः। ॐ प्रजापतये स्वाहा–इदंप्र जापतये० इतिमनसा। ॐ इंद्रायस्वाहा इदमिंद्राय० इत्याघारौ। ॐअग्नयेस्वाहा इदमग्नये॥ ॐ सोमायस्वाहा-इदंसोमा य०॥इत्याज्यभागौ॥ततोऽन्वारब्धकर्तृ कहोमः॥ॐअंतरिक्षायस्वाहा । इदमंत रिक्षाय० ॥ ॐवायवेस्वाहा–इदंवायवे० ॐ ब्रह्मणेस्वाहा–इदंब्रह्मणे० । ॐ छंदो

भ्यः स्वाहा-इदंछंदोभ्यः०॥ ॐ प्रजाप-
तयेस्वाहा- इदंप्रजापतये०इतिमनसा॥
ॐदेवेभ्यः स्वाहा इदंदेवेभ्यः० ॥ ॐऋ-
षिभ्यः स्वाहा-इदमृषिभ्यः०॥ ॐश्रद्धा
यैस्वाहा इदंश्रद्धायै० ॥ॐमेधायैस्वाहा
इदंमेधायै ॥ ॐ सदसस्पतयेस्वाहा-
इदंसदसस्पतये० ॥ ॐअनुमतयेस्वाहा
इदमनुमतये० ॥ ततोब्रह्मणान्वारब्धो
जुहुयात ॥ अत्राहुतिदशतयैतत्तदाहु
त्यनंतरंस्त्रुवावस्थिताज्यस्यप्रोक्षणीपात्रे
प्रक्षेपः॥ॐभूः स्वाहा इदमग्नये० ॥ ॐ
भुवः स्वाहा-इदं वायवे० । ॐस्वःस्वा
हा-इदंसूर्याय० ॥ एतामहाव्याहृतयः॥

(१) प्रोक्षणीपात्रका लक्षण देवलोक लिखतेहैं ॥
यथा-प्रणीतानैर्ऋते भागे तद्वद्वायव्यगोचरे । वारणं
संविजानीयात्सर्वकर्मसुकारयेत् ॥ सर्वसंशोधनार्थाद
पात्रं वारणमिष्यते । द्वादशाङ्गुलिदीर्घं च करतलो
न्मितखातकम्।पद्मपत्रसमाकारं मुकुलाकारमेववा। इति

(२) आज्यस्थालीका लक्षण-यथा व्यासस्मृतौ-
तैजसीमृन्मयीवापि ह्याज्यस्थाली प्रकीर्तिता द्वादशा

गुलविस्तीर्णा प्रादेशोच्चाप्रमाणतः) अर्थ-तैजस अर्थात् कांस्यरजतआदिधातुकी बनीहुई वा मृत्तिकासे वनी-हुई द्वादश १२-अंगुली विस्तृत और प्रादेशमात्र ऊँची आज्यस्थाली होतीहै ॥

(३) चरुस्थालीका लक्षण यथा-चरुस्थाली तथैवापि दीर्घोच्चा तु प्रमाणतः।नानयोरन्तरंयस्माद्द्रव्य संस्करणार्थका इति ॥ अर्थ ॥ आज्यस्थालीवत् चरु-स्थालीभी प्रमाणसे दीर्घ और ऊँची होतीहै इनका भेद कुछ नहीं जिस लिये यह द्रव्य संस्कारके वास्ते है

(४) संमार्जनकुशामें प्रमाण- स्रुवसंमार्जनार्थं तु कुशत्रयमुदीरितम् । इति व्यासस्मृतौ ॥

(५) उपयमन कुशामें प्रमाण यथा-उपयमनार्थे-माख्यातास्त्रिषण्णवमिताः कुशाः । वेणीरूपानिरोधार्थी निरोधे बहुभिः सुखम् ॥ इति भृगुवचनम्॥अर्थ-उपय-मनके लिये त्रि ३ षट् ६ नव ९ परिमित कुशा वेणी-रूपनिरोधके लिये कहीहै ॥

(६) समिधस्तिस्रः-प्रमाण. पराशरस्मृतौ-पाला-शजं प्रादेशमात्रं दैर्घ्येण स्थूलता । कनिष्ठिकासमंध्या त्वाविधिमग्नौ क्षिपेच्चतत् ॥ अर्थ-पलाशकी प्रादेश मात्र कनिष्ठिका समस्थूल ब्रह्माजीका ध्यानकर अग्निमें क्षेपकरे ॥

ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषांसिप्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्याम् (१) ॐसत्वन्नो अग्ने वमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्वनो वरुण रराणोव्वीहि मृडीक सुहवो नएधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्चसत्व मित्वमया असि। अयानो यज्ञंवहास्य यानोधेहि भेषज स्वाहा। इदमग्नये०॥ ॐ येते शतं वरुणयेसहस्त्रंयज्ञियाः पाशा वितता महांतः। तेभिर्नो अद्यसवितोत विष्णुर्विश्वे मुंचंतु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च॥ ॐउदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमंविम ध्यम श्रथाय।

अथाव्वयमादित्यव्रतेववानागसोऽअदि
तयेस्यामस्वाहा । इदंवरुणाय० ॥
इति सर्वप्रायश्चित्तम् ॥

त्वन्नो अग्ने यहमंत्र शुक्ल यजुर्वेद अध्याय २१ मंत्र ३ है॥और सत्वन्नो अग्ने यह मंत्र शुक्ल यजुर्वेद अध्याय २१ मंत्र४ है ॥ अयाश्चाग्ने यह मंत्र शुक्लयजुर्वेद अध्याय मंत्र है. येतेशतं यह मंत्र शुक्ल यजुर्वेद अध्याय. मंत्र. है उदुत्तमं वरुण यहमंत्र शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १२ मंत्र १२ है यह सर्वप्रायश्चित्त निवृत्तिमें आहुति हैं ॥

ॐप्रजापतये स्वाहा[१]इदं प्रजापतये० ।
इतिमनसा इतिप्राजापत्यम् । ॐअग्नये
स्विष्टकृतेस्वाहा—इदमग्नयेस्विष्टकृते० ।
इति स्विष्टकृत् ॥ ततः संस्रवप्राशनम् ।
तत आचम्य ॥ ॐ अद्य कृतैतत्समाव-
र्तनहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूप-
ब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदंपूर्णपात्रं प्रजाप
तिदैवत्यममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्म
णाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे॥

---

१ यजु० अध्याय २१ मंत्र ३ ।

इति दक्षिणां दद्यात्।ॐस्वस्तीति प्रति वचनम्॥ ततो ब्रह्मग्रंथिविमोकः। ततः पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन ॐ सुमित्रि यानऽआप ओषधयः सन्तु॥इतिमंत्रेण शिरः संमृज्य॥ ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै संतुयोऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ इतिमंत्रेणैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम्॥

(७) स्रुव वा ब्रह्महस्तका लक्षण. यथा—कात्या-यनः—स्रुवस्तु ब्रह्महस्ताख्यः स्कंधांतो बाहुरुच्यते॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारसमन्वितः॥ दण्डाकारो भवेन्मूले स्यादरत्न्यां तु तत्समः। सकङ्कणस्तु दण्डाग्रे-हस्ताकारस्ततो बहिः॥ अष्टांगुलीपरीमाणं तन्मूला-भ्यंतरेत्यजेत्॥ दशांगुलीपरीमाणं तन्मूलाभ्यंतरे त्यजेत्॥ दशांगुलीपरीमाणमारभ्यकङ्कणावधि। हस्तमात्रं भवेद्धस्तःस्रुव इत्यभिधीयते॥ खादिरः शैंशिपो वापि ह्यन्यो वा पुण्यवृक्षजः। धावकोपि समा ख्यातो होमार्थं मुनिभिः कृतः। इति॥

(८) घृतलक्षणम्—तथाच स्मृतिः—गव्यमाज्यंजु-हुयात्तदभावे माहिषं स्मृतम्॥ तथा च श्रुतिः॥ गव्यमाज्यं जुहुयात्तदभावेमाहिषेयमिति॥

(९) चरुलक्षणम्–व्रीहितण्डुलसंसिद्धो मुख्यः प्रोक्तः सुरर्षिभि त्याचारचंद्रोदये ॥

(१०) पर्यग्निलक्षणम् । तथाच श्रुतिः–पर्यग्निं कुर्वन् ज्वलदुल्मुकमादाय प्रदक्षिणमाज्यचर्वोः समंताद् भ्रामयेत् ॥ इति ॥

(११) समिधोलक्षणम् (यथा-पलाशखदिराश्वत्थशम्युदुंबरजा समित् । अपामार्गार्कदूर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः॥सत्वचःसमिधःस्थाप्य ऋजुश्लक्ष्णाःसमास्तथा। शस्ता दशाङ्गुलास्तास्तु द्वादशांगुलिकास्तु ताः ॥ आर्द्राः पक्वाःसमच्छेदास्तर्जन्यंगुलिवर्तुलाः । अपाटिताश्च विशिखाः कृमिदोषविवर्जिताः । ईदृशीर्होमयेत्प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम्) । इतिव्यासकात्यायनगौतमभरद्वाजाः ॥ अर्थ–पलाश (पलाह) खदिर (खैर) अश्वत्थ (पिप्पल) शमी (जंढी) उदुंबर (गूलर) अपामार्ग (फुटकंडा) दूर्वा (घास) कुशा इनकी समिधा त्वचायुक्त १० दश अंगुलीकी वा १२ द्वादश अंगुलीकी श्रेष्ठ सीधी आर्द (गिल्ली) पक्व तर्जनीकीवत् वर्तुल (गोल) फटीहुई नहो कृमिदोषसे रहित ऐसी समिधा हवन करनेसे विपुल लक्ष्मीको प्राप्त होताहै ॥

ततस्तरणक्रमेणवर्हिरानीय घृतेनाभि-

घार्यहस्तेनैव जुहुयात् । ॐ देवांगातु विदोगातुंवित्वागातुमित मनसस्पतऽ इमंदेवयज्ञ स्वाहाऽवातेधाःस्वाहा ॥ इति बर्हिर्होमः । ततोब्रह्मणान्वारब्धक र्तृकं कर्म्म । ततोग्निपश्चिमोपविष्टोब्रह्म चारीपरिसमूहनंकुर्यात् । तत्रघृताक्तशु ष्कनिषिद्धेतरेन्धनेन पंचाहुतीर्हस्तेनैव जुहुयात् ॥ ॐ अग्नेसुश्रवःसुश्रवसंकुरु ॐयथात्वमग्नेसुश्रवः सुश्रवाअसि ॐ एवंमांसुश्रवः सौश्रवसंकुरु।ॐयथात्वम ग्नेदेवानांयज्ञस्यनिधिपाअसि। ॐएवम हंमनुष्याणांवेदस्यनिधिपोभूयासम् । ततःप्रदक्षिणमग्निं वारिणापर्युक्ष्य उत्था यघृताक्तांप्रादेशमितसमिधमादायजुहु यात्॥तत्रमंत्रः।ॐअग्नयेसमिधमाहार्षं वृहतेजातवेदसे।यथात्वमग्नेसमिधासमि ध्यसएवमहमायुषामेधयावर्चसाप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनसमिधेजीवपुत्रोमम

(१) यहमंत्र यजु० अध्याय ८ मंत्र २१ में है।

चार्यौमेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यश स्वीतेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भूयास॑ँ स्वाहा॥ततः समिदंतरद्वयमनेनैवक्रमेण प्रत्येकं हुत्वा ॥

(मंत्रार्थ अग्नेसुश्रव इति) सुश्रव शोभन नामयुक्त हे अग्निदेव मुझको सुश्रव श्रेष्ठ कर्णोवाला करो । जैसे तुम सुश्रवहे तद्वत् सुंदर श्रवणसे उत्पन्नज्ञानशाली करो। हे भाण्डागारिके गृहमेधी अग्ने जैसे तुम यज्ञसंबंध-सें इन्द्रादिदेवताओंके निधिप रक्षकहो इसीप्रकार मैं मनुष्योंका और वेदोंका रक्षक होऊँ ॥ इति ॥

(मन्त्रार्थ--अग्नये)हे अग्ने । मैं समिधाको ग्रहणकरताहूँ अतिशयसे प्रकाशमान तुम्हारेलिये । हेअग्ने ! जैसे तुम मुझकर दीहुई समिधासे वृद्धिको प्राप्तहोतेहो । इसी प्रकार मैं (आयु) चिरजीवन (मेधा) धारणा शक्ति वाली बुद्धि (वर्चस) तेज (प्रजया) पुत्रादिसे (पशुभिः) गवादिकोंसे (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेजसे वृद्धिको प्राप्तहोऊँ ॥ और मेरा गुरु जीवनपुत्रवुद्धियुक्तहोवे ॥ और मैं नित्ययज्ञके करनेवाला वेदाध्ययन शील तेज यश युक्त अन्नके देनेवाला और भोगनेवा लाहोऊँ । अर्थात् अन्नादिका वियोग हमको कभी न हो इस कामनासे दीहुई आहुति अग्निके लिये स्वगत हो॥

उपविश्यतेनैवक्रमेणपंचाहुतीर्घृतात्तस्रु
क्निषिद्धेतरेंधनेनजुहुयात् ॥ॐअग्नेसु
श्रवः सुश्रवसंमाकुरु। ॐयथात्वमग्नेसुश्र
वासिॐएवंमांसुश्रवः सौश्रवसंकुरु।यथा
त्वमग्नेदेवानांयज्ञस्यनिधिपाअसिॐएव
महंमनुष्याणां वेदस्यनिधिपोभूयासम्॥
ततः प्रदक्षिणमग्निंवारिणापर्युक्ष्य तूष्णीं
पाणी प्रतप्य मुखंप्रतिमंत्रांतरेऽवमृशति।
ॐतनूपा अग्नेसितन्वंमेपाहि।ॐआयुर्दा
अग्नेस्यायुर्म्मेदेहि॥ ॐवर्चोदाअग्नेवर्चोमे
देहि।ॐअग्नेयन्मेतन्वाऽऊनंतन्मऽआपृण
ॐमेधांमेदेवः सविताआदधातु। ॐमे
धांमेदेवीसरस्वतीआदधातु ॥ ॐमेधांमे
अश्विनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजौ ॥ तत्रस
र्वगात्रादिषुदक्षिणपाणिनास्पर्शः । तत्रप्र
त्येकंमंत्रः ॥ ॐअंगानि चमआप्यायतां
इतिसर्वगात्रालम्भने ॥ ॐवाक्चमआ-
प्यायताम् । इतिमुखालंभने॥ ॐप्राणश्च

मआप्यायताम् ॥ इतिनासिकयोः ॥ॐ
चक्षुश्चमआप्यायताम्॥ इतिचक्षुर्द्वयस्प
र्शः॥ॐश्रोत्रं च म आप्यायताम्। इति
श्रोत्रद्वयस्पर्शः।ॐ यशोबलंचमआप्या
यताम् । इतिमंत्रपाठमात्रम् ॥

अग्नेसुश्रवःसुश्रवसंमाकुरु इत्यादि । तनूपा अग्नेसि इत्यादि । मेधांमेदेवः सविता आदधातु इत्यादि । अंगानि च म आप्यायतामित्यादि मंत्रोंकेअर्थ पीछे लिखेहैं इसलिये इस स्थानमें नहीं लिखे ॥

ततोदक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मनाऽत्र्या
युषं कुर्यात् ॥ ॐत्र्यायुषंजमदग्नेः । इति
ललाटे ।ॐकश्यपस्यत्र्यायुषम्। इतिग्री
वायाम्।ॐयद्देवेषुत्र्यायुषमिति दक्षिणबा
हुमूले ॥ ॐतन्नोऽस्तुत्र्यायुषमितिहृदि ॥
ततोव्यस्तपाणिभ्यां पृथिवींस्पृशन्प्रथ
मंवैश्वानरंसंबोध्याभिवादयेत्॥ तत्रामु
कगोत्रोऽहममुकप्रवरोहममुकशर्माहंभो
वैश्वानरत्वामभिवादये॥ तथैवाचार्यंचा
भिवादयेत्॥ततआयुष्मान्भव सौम्यइ

त्याचार्योब्रूयात्॥ततोऽग्नेरुत्तरतः प्राग
ग्रान्कुशानास्तीर्यतदुपरिदक्षिणोत्तरक्रमे
णासादितवारिपूर्णकलशाष्टतयेकलशा
नांपुरतःप्रागग्रेषुकुशेषुस्थित्वा एकस्मा
दाम्रपल्लवेनोदकगृहीत्वा ॥यजु०अध्या
य-मंत्र यथा-ॐयेप्स्वंतरग्नयः प्रविष्टा
गोह्यउपगोह्यो मयूषोमनोहास्खलोवि
रुजस्तनूषेद्दुपुरिंद्रियहातान्विजहामियो
रोचनस्तमिहगृह्णामि॥इतिमंत्रेण॥ततस्ते
न-मामभिषिंचामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे
ब्रह्मवर्चसाय ॥ इत्यात्मानमभिषिंचति॥
ॐयेप्स्वंतरग्नय इति मंत्रेणगृहीत्वा
आम्रपल्लवेनाभिषिंचति ॥

तिसके अनंतर अग्निसे उत्तर कोणमें पूर्वाग्रकुशा
विछाय उनके ऊपर दक्षिणोत्तर क्रमसे अर्थात् जो शु-
भकार्य होताहै उसकी पूर्व वा उत्तर दिशामें समाप्ति
करी जातीहै इस लिये दक्षिणसे आदिले क्रमसे उत्तरकी
तरफ समाप्तिकरनी चाहिये ॥ अष्टकुम्भजलसे पूर्णकर
पूर्वाग्रकुशोंपर स्थित होएकर आम्रपत्रसे जलग्रहणकर

(येप्स्वंतरग्नयः) इसमंत्रसे ॥ (मत्रार्थ येप्स्वंतरग्नय इति) (अप्सु) जलोंके मध्यमें जो गोह्य १ उपगोह्य २ मयूप ३ मनोहा ४ खल ५ विरुज ६ तनूदुषु ७ इंद्रियहा ८ यहजो अग्नि अष्ट प्रकारकी तिनका जो अपने २ नामसेही दोषोंके प्राप्त करने वाली है इनको त्यागन करताहूं ॥ और इस जलमें जो रोचनानामसेअग्नि है अर्थात् कल्याण कांति प्रीतिके देनेवाली (प्र० रुचदीप्तावभिप्रीतौ च) तिसको ग्रहण करताहे स्नानके लिये तदनंतर । श्री लक्ष्मी यश ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज) आयुवृद्धिके लिये आत्माको अभिषिंचनकरे ॥

ॐयेनश्रियमकृणुतां येनावमृशता॑ सुरांयेनाक्षावभ्यपिंचतां यद्वा तदश्विना यशः ॥ इतिमंत्रेण ॥ ततस्तेनैव क्रमेणपुनः येऽप्स्वंतरग्नय० इत्यनेनतृतीयकलशस्थजलमादाय॥ॐआपोहिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्ज्जे दधातन । महेरणायचक्षसे इतिमंत्रेणाभिषिच्य ॥ तेनैव क्रमेण येप्स्वंतरग्नयइतिमंत्रेण चतुर्थकलशस्थ जलमादाय॥ॐ योवः शिवतमोरसस्त स्यभाजयते हनः उशतीरिवमातरः ।

इतिमंत्रेणाभिषिच्यं पुनः पंचमकलश स्थंजलं येप्स्वंतरग्नय इतिमंत्रेण तथैवा दाय ॥ ॐतस्मा अरंगमामवोयस्य क्षयायजिन्वथ आपोजनयथाचनः ॥ इतिमंत्रेणाभिषिच्य ॥

[मंत्रार्थ-येन श्रियमिति](श्रियम)लक्ष्मीलाभके लिये यशसे यशलाभके लिये ब्रह्मज्ञान ब्रह्मतेज लाभके लिये जिस जलसे अश्विनीकुमार लक्ष्मी युक्त होते भये और (सुरा) मदिरा से जो उत्पन्नदोष तिसको मार्जन करते भये। अर्थात् नाश करते भये। और जिसजलसे (अक्षि) नेत्र अभिषिंचन करते भये पूर्वोक्त गुणयुक्त जलसे अपने आत्माको अभिषिंचन करताहै ॥ अथवा जिस जलसे अश्विनीकुमारोंने लक्ष्मी उत्पन्न करी और सुराका दोष नाश किया और (चक्षु)नेत्र अभिषिंचन कर दिव्यकिये तिनका ऐसे नित्य (अभ्युदय) मंगल की इच्छावाला जो जल उस जलके (अभिषेक)स्नान से मुझको लक्ष्मी यश ब्रह्मतेज यहहो । इतिवाक्यार्थः। आगे येप्स्वंतरग्नय--इसमंत्रसे एक २ घटसे जलको ग्रहणकर आपोहिष्ठेत्यादितीनमंत्रोंसे क्रमपूर्वक अभि षिंचन करे॥ आपोहिष्ठेत्यादि तीन मंत्रोंका अर्थ पूर्वमें लिखनेसे पुनः नहीं लिखते ॥

ततोऽवशिष्टकलशत्रितयजलंतथैवये-
प्स्वन्तरग्नय इतिमंत्रेणप्रत्येकंगृहीत्वा।
तूष्णींप्रत्येकमभिषिंचति । ततोमेखला
मोचनंशिरोभागेन ॥ ॐउदुंत्तुमंव्वरु
णपाशंमस्मदवाधमंविमंध्यम श्रंथाय।
अथाव्वयमांदित्यव्रतेतवानांगसोऽअदि
तयेस्याम ॥ इतिमंत्रेण ॥ दण्डकृष्णाजि
नेतूष्णींभूमौनिधाय॥ अन्यद्वस्त्रंपरिधा
योत्तरीयंचकृत्वाचम्य बद्धांजलिरादित्य
मुपतिष्ठेत ब्रह्मचारी ॥

शेषकलशत्रयोंसे येऽप्स्वंतरग्नय इसमंत्रसे जलको क्रमसे ग्रहणकर तूष्णींहो अभिषिंचन करे ॥ तदनंतर शिरोभागसे मेखलामौंजी (तडागी) का मोचन करे अर्थात् उतार दे उदुत्तमं इसमंत्रसे ॥(मंत्रार्थ–उदुत्तम इति) हे वरुण तुम्हारा उत्तम पाश है उसको ऊपरसे श्लथकरो। और जो मध्यम पाश है उसको अवाचीनतासे श्लथकरो। हे अदितिके पुत्र वरुणव्रत अर्थात ब्रह्मचर्यको धारण कर हम तुम्हारेसे अनपराधी (अपरा-

---

१ यहमंत्र यजु. अ.१२। मं. १२ का है॥

धरहित) होकर अदीनताके लिये होंगे अर्थात् दीनतासे
रहित होंगे ॥ इति ॥ इसके अनंतर दण्ड कृष्णाजिन
तूष्णीं होकर पृथिवीपर उतारकर धरदे ॥ तदनंतर
अन्यवस्त्र और उत्तरीय अर्थात् ऊपरके लेनेवाला वस्त्र
धारण कर हाथ जोड़ आदित्यका उपस्थान करे उद्य-
न्भ्राजिष्णु इत्यादि मंत्रोंसे ॥

ॐउद्यन्भ्राजिष्णुरिंद्रोमरुद्भिरस्थात् ।
प्रातर्यावभिरस्थात् दशसनिरसिदश
सनिं माकुर्वाविदन्मागमयोद्यन्भ्राजि
ष्णुरिंद्रोमरुद्भिरस्थाद्दिवायावाविभिर
स्थाच्छतसनिरसि शतसनिंमाकुर्वावि-
दन्मागमयोद्यन् भ्राजिष्णुरिंद्रोमरुद्भि-
रस्थात्सायं यावभिरस्थात्। (सायंयाव
भिरस्थात) सहस्रसनिरसिसहस्रसनिं
माकुर्वाविदन्मागमय ॥ इतिमंत्रेण ॥

[मंत्रार्थ] ऐश्वर्ययुक्त आदित्य सूर्य भगवान् ।
(उद्यन्–उदयं कुर्वन्)अर्थात् उदयको प्राप्तहोता भया
(अस्थात) स्थित होता भया (किंभूतः) कैसा
(भ्राजिष्णुः)भ्राजमान रश्मिकिरणोंको जो धारण करे
(प्रातः) प्रातःकालमें (यावद्भिर्मरुद्भिर्देवैः सह अस्थात्)

सर्वं देवताओंके साथ स्थित होताभया ॥ (उत हे वि-द्वन्)सर्वजाननेवाले (आदित्यस्त्वंदशसनिरसि बहुधनोसि) तुम बहुत धनवाले हो (अतः)इसलिये(दशसानिं मामांकुरु)बहुनधनयुक्त मुझको करो (किंच मामां ब्रह्म-चर्यादुत्तीर्णमागमय-जानीहि) और मुझको ब्रह्मचर्यसे उत्तीर्णको जानो।और पुनः पुनःपाठमें दिन और सायं-कालमें यावद्भिः शतसनि सहस्रसनियह विशेषहै॥ और शत सहस्रशब्द यह बहुतके वाचक हैं ॥ वाक्यार्थ यह है कि–सूर्य दिन और सायंकालमें रश्मियोंको धारण करता साथ देवता गणके उदय होता है उसकी प्रार्थना करी जातीहै कि हे बहुधन सूर्य ! मुझको भी बहुधन देओ और ब्रह्मचर्यसे उत्तीर्णको जानो ॥ या-वभिः इस स्थान (वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च) इस वच-नसे दकारका लोप भया ॥

ततोदधितिलान्वा प्राश्याचम्य । जटालोमनखादींश्छेदयित्वा स्नात्वाऽऽचम्यप्रादेशमितोदुंबरकाष्टेनदंतधावनं कुर्यात् । ॐअन्नाद्यायव्यूहध्वꣳसोमोराजायमागतम् । समेमुखं प्रमाक्ष्यंते यशसा च भगेनच ॥ इतिमंत्रेण ॥ ततोदंतकाष्टं परित्यज्य आ

चम्य सुगंधिद्रव्येणोद्वर्तनानंतरं स्नात्वा द्विरा
चम्य चंदनकुंकुमादिना नासिकाया मु
खस्यालंभने ॥ ॐप्राणापानौमेतर्पय ॥
ॐचक्षुर्मेतर्पय ॥ ॐश्रोत्रंमेतर्पय ॥ इति
मंत्रेणानुलिम्पति । ततः पाणी प्रक्षाल्य
दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः कृता
पसव्यो द्विगुणभुग्नकुशत्रयतिलजलान्या
दाय ॥ आस्तृतकुशत्रयोपरि पितॄंस्तर्प
येत् ॥ ॐपितरः शुंधध्वमितिमंत्रेण ॥
ततः सव्यं कृत्वा आचम्यानुलिप्यजपेत

उपस्थानके अनंतर दधि तिल प्राशनकर जटा (केश) लोम (रोम) नखादि छेदन करवाय स्नान-कर आचमनकरे ॥ प्रादेशमित (औदुंबर)-गूलरके काष्ठकी दंतधावन (दांतन) (ओमन्नाद्याय) इसमंत्रसे करे। मंत्रार्थ-अन्नाद्यायेति हे वनस्पति वृक्ष तुम प्रवुद्ध हो इस विषयमें वनस्पतियोंका स्वामी चंद्रमा जिस वृक्षमें आताभया सो वनस्पति मेरे मुखको यश और सौभाग्यतासे प्रमार्जनकरे अर्थात् शुद्ध करे अन्नप्राप्तिके लिये ॥ अनंतर दंतकाष्ठको त्याग आचमन कर सुगं-धिद्रव्यसे उद्वर्तन (बटना) मलस्नान कर द्विआच-

मनकरे ॥ प्रमाण. या०स्मृ०अध्यायः १ प्रथम-(स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे । आचांतः पुनराचामेद्वासो विपरिधायच) ॥ अनंतर चंदन कुंकुमादिकोंसे नासिका मुखका स्पर्शकरना ॐ प्राणापानौ मेतर्पय इसमंत्रसे ॥ चक्षुर्मेतर्पय इससे नेत्र ॥ श्रोत्रंमे तर्पय इससे कर्णका आलंभनकरे ॥ अनंतरहस्तप्रक्षालनकर दक्षिणकी तरफ मुख कर वामजानु (गोडा) नम्रकर निवाय ॥ अपसव्य यज्ञोपवीत कर मोटकतिल जल लेकर । कुशत्रयके ऊपर ओंपितरः शुंधध्वमिति इसमंत्रसे पितृतर्पण करे (शुन्धध्वम्) अर्थ शोधनकरो यह याज्ञावाक्यार्थ है ॥ अनंतर यज्ञोपवीत सव्यकर आचमन कर अनुलिप्त हो यह मंत्र कहे सुचक्षेति ॥

ॐसुचक्षा अहमक्षीभ्यांभूयास सुवर्चा मुखेन सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ॥ इति ॥ ततोऽहतवासःपरिधानम् ॥ ॐपरिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि शतं च जीवामि शरदः पुरूचीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये इतिमंत्रेण । ततो यज्ञोपवीतपरिधानम् ॥ ॐयज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

आयुष्यमग्र्यंप्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बल
मस्तुतेजः॥ इतिमंत्रेण॥ द्वितीयग्रहणम् ॥
यज्ञोपवीतमिति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छंदः
उपवीतदेवता यज्ञोपवीतपरिधाने विनि-
योगः ॥ यज्ञोपवीतमसियज्ञस्यत्वा यज्ञो-
पवीतेनोपनह्यामि ॥ आचमनम् ॥

नेत्रोंसे सुचक्षशोभनदृष्टियुक्त और मुखसे प्रताप
शाली कर्णोंसे सुंदर श्रवणकरनेवाला मैं हूँगा ॥ अनंतर
अहत (अर्थात् दग्ध जीर्णतादिदोषरहित) वस्त्र नवीन
(परिधास्यै) इसमंत्रसे परिधानकरे अर्थात् पहने ॥
(मंत्रार्थ-परिधास्यै) परिधान करूंगा अर्थात् पह-
नूँगा । यशोधास्यै-कीर्तिधारण करूंगा । अर्थात् वस्त्र
धारणसे कीर्ति को प्राप्तहूंगा। इससे मेरी (दीर्घा-
युत्वाय) दीर्घायुहो किंच (जरदष्टिः) वृद्ध में होऊं ।
(शतंचजीवामि शरदः) शतवर्षजीवित रहूँ (शतायुर्वै
पुरुष) इतिश्रुतेः (पुरूची-वा सुवर्च्चाः) शोभनतेज
युक्त (रायस्पोषम्) धनवृद्धिके लिये ❀ रायोवैधनानि
इति ❀ (अभिसंव्ययिष्ये) चारोंओरसे भलीप्रकार
आवरण कर्ताहूँ पहनताहूँ ॥ अनंतर द्वितीयवस्त्रमें
उत्तरीय पहने (प्रमाण-तथाच पारस्करः-अथोत्त-

रीयं परीधत्ते यशसामाद्यावापृथिवीति) अर्थ–उत्तरीय–ऊपरके धारणकरनेवाला वस्त्र यशसामाद्यावा पृथिवी इस मंत्रसे धारणकरे ॥ मंत्रो यथा–ॐयशसा माद्यावा पृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती । यशो भगश्च माविदद्य-शोमा प्रतिपद्यताम् । इति ॥ [मंत्रार्थ] यशसे द्यावा-पृथिवी (आकाश–भूमि) आच्छादन करे इस प्रकार इंद्र देवताओंका राजा बृहस्पति देवगुरु यशसे मुझको आच्छादन करे । और यश मुझको प्राप्तहो और सौभा-ग्यतां प्राप्त हो ॥ वारंवार कहना वारंवार आदर, अतिशयके लियेहै ॥ इसलिये इसमंत्रसे उत्तरीयवस्त्र-धारण करना चाहिये [यज्ञोपवीतं इसमंत्रका अर्थ प्रथम लिखाहै] इसस्थान इसमंत्रसे द्वितीय यज्ञोपवीत धारण करना ॥

अथोत्तरीयम् ॥ यशसामाद्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती यशोभगश्चमाविदद्य शोमाप्रतिपद्यताम् ॥ इतिमंत्रेण ॥ ततः पुष्पमालाग्रहणेविनियोगः ॥ ॐ याआ हरज्जमदग्निःश्रद्धायैकामायेंद्रियाय ता ऽअहं प्रतिगृह्णामि यशसाचभगेन च॥ इतिमंत्रेणपुष्पमालाग्रहणम्॥ततः पुष्प

मालापरिधानम् ॥ ॐ यद्यशोप्सरसामिंद्र श्चकारविपुलंपृथुतेनसंग्रथिताः सुमनस आबध्नामियशोमयि इतिमंत्रेणपुष्पमालापरिधानम्॥अथवसुप्रतिष्ठा[१] ॥ उष्णीषेणशिरोवेष्टनम्॥ ॐ युवासुवासाःपरिवीतआगात्सउश्रेयान्भवतिजायमानः॥ तंधीरासः कवयउन्नयंतिस्वाध्योमनसा देवयंतः॥इतिमंत्रेण॥ ततः कुंडलेपरिदधाति॥ ॐ अलंकरणमसि भूयोलंकरणं भूयात्॥ततोंजनम् ॥ ॐ वृत्रस्यासिकनीनकश्चक्षुर्दा असिचक्षुर्म्मे देहि । ततआदर्शेआत्मदर्शनम् ॥ ॐ रोचिष्णुरसि इतिमंत्रेण॥ततश्छत्रग्रहणम् ॐ बृहस्पते छदिरसि पाप्मनोमामन्तर्धेहि तेजसो यशसोमामंतर्धेहि। इतिमंत्रेण ॥ ततः पद्भ्यामुपानहौ प्रतिगृह्णाति । ॐ प्रतिष्ठेस्थोविश्वमापातम्॥इतिमंत्रेण ॥ ततो वैणवदंडधारणम् ॐ विश्वाभ्योमानाष्टाभ्यस्परिपाहिसर्वतः । इतिमंत्रेण ॥

---

१ वसुप्रतिष्ठा अर्थात् धनस्थापनकरना ॥

(मंत्रार्थ-या आहरत्) जमदग्निनाममहर्षिने श्रद्धाके लिये जो पुष्पोंकी माला ग्रहण की सो वही पुष्पमाला यश और सौभाग्यप्राप्तिकेलिये में ग्रहणकरताहूँ ॥ यशसाच भगेन च यह चतुर्थीके अर्थमें तृतीयाविभक्तिहै॥ इस मंत्रसे पुष्पमालाग्रहणकर यद्यशोप्सरसां इस मंत्रसे धारण करे ॥ (मंत्रार्थ-यद्यश इति) इंद्र देवराट् अप्सरा घृताची मेनका रम्भा उर्वशी तिलोत्तमा सुकेशी मञ्जुघोषा इत्यादिको यह रूपवतीहै ऐसे श्लाघाकरनेसे जोयश विस्तृत किया तिस विपुलयशसे ग्रथित की हुई यह पुष्पमालिका यश(ऐश्वर्य) के लिये में धारण करता हूँ॥अर्थात् इस मालासे मुझको यश मिले इसमंत्रसे पुष्पोंकी माला धारण करे ॥ वस्त्रकी प्रतिष्ठा के अनंतर (युवासुवासाः) इमंत्रसे उष्णीष (पगड़ी) से शिरका वेष्टन करे (मंत्रार्थ युवा सुवासेति)या युवा (जो यौवन युक्त पुरुष) परिवीतः (वस्त्रोंसे वेष्टित अर्थात् वस्त्रधारणकरेहुए) (आगात्-आगतवान्) आताभया। (सः) सो (उत) वितर्कस्तोभार्थमें है (श्रेयान् भवति) श्रेष्ठ होताहै। कैसा (सुवासाः) शोभन वस्त्रधारी। (जायमानः) अतिशययुक्त (तं) तिसयुवको (धीरासः) पण्डित पुरुष (उन्नयंति) उत्कर्षताको प्राप्तकरता है। कैसे-(कवयः) कीर्ति-

करनेवाले(स्वाध्यः) सुंदरसिद्धिवाले फिर केसे (मनसा देवयंतः) मनसे हृदयसे स्तवनकरनेवाले ॥ इति ॥ इसके अंनतर अलंकरणमसि इसमंत्रसे अलंकार धारण करे ॥ [मंत्रार्थ–अलंकरणमसि] हे कर्णकुंडल तुम्हारा स्वरूप प्रसाधन शरीरकी शोभाके लियेहै इसलिये वारंवार मुझको भूषण हो इति ॥ अनंतर (वृत्रस्यासि) इस मंत्रसे अंजन करे [मंत्रार्थ]हे अंजन तुम वृत्रनाम महाबली असुर की (कनीनिका) अर्थात् नेत्रोंका कालिमाहै (प्र० तारकाक्ष्णः कनीनिका) इत्यमरः ॥ इस कारणसे तुम चक्षु दायक हो इसलिये मुझको चक्षु नेत्र देवो ॥ तदनंतर दर्पण(मुकुर) आदर्शमें रोचिष्णु इसमंत्रसे मुख देखे [मंत्रार्थ] हे दर्प्पण तुम प्रकाशशाली हो इसलिये मुझको सर्वत्र प्रकाशस्वरूप करो ॥

इसके अनंतर (बृहस्पतेश्छदिरसि) इसमंत्रसे छत्र (छतरी) ग्रहण करे ॥ (मंत्रार्थ) हे छत्र तुम देव गुरु बृहस्पतिजीका अपवारण छत्र है इसलिये मुझको पापसे और तेजसे (अर्थात् सूर्यकी आतप) धूपसे अंतर्धानकरो (अर्थात् रक्षाकरो) यशके लिये ॥ वाक्यार्थ यह है कि हे छत्र जिससे तुम बृहस्पतिजीको पाप तापसे आवरण रक्षा करते हो इसलिये मेरी

रक्षाकर यशयुक्त करो ॥ यशसः यह चतुर्थीके अर्थमें षष्ठी है ॥ छत्र धरणके अनंतर (उपानह) जूता पादोंमें धारण करे ॥ (मंत्रार्थ) हे उपानहो तुम चलने दुरनेमें उपक्रांत गति होनेसे प्रतिष्ठावाले हो इसलिये संपूर्णगतिके विरोधी कंटकादिसे मेरी रक्षा करो ॥ अनंतर वैणव वाँसका दण्ड । विश्वाभ्यो० (इसमंत्रसे ग्रहण करे ॥) हे वैणव दंड । संपूर्ण राक्षस सर्प सिंह नाशकारी भूतोंसे मेरी सर्वतोभावसे रक्षाकरो ॥

अत्र स्नातकस्य नियमाः ॥ गानवादित्र नृत्यत्यागः ॥ नतत्रगमनंक्षेमेसतिनरात्रौग्रामांतरगमनं न धावेत् न कूपेऽवेक्षणं न वृक्षारोहणं फलत्रोटनममार्गेण न गच्छेत् नग्नोनस्नायात् । नसंधिशयनम नविषमभूमिलंघनम् । अश्लीलंनोपवदेत् । उदितास्तमयेसूर्यंनपश्येत् । जलमध्येसूर्यमाकाशस्थंनपश्येत् । देवे वर्षतिनगच्छेत् । उदके आत्मानंनपश्येत् । अजातलोम्नीं प्रमत्तांपुरुषाकृतिं षंढां च नगच्छेत् ॥ इत्यादि । ततआ

चार्याय वरं दक्षिणां दद्यात् । ततः मूर्द्धानंदिवोऽअरतिंपृथिव्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम्। कवि ᳪ᳭ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रंजनयन्तदेवाः स्वाहा इतिमंत्रेण- फलपुष्पसमन्वितघृतपूर्ण स्रुवेणमाणवकदक्षिणकरस्पृष्टेन उत्थाय पूर्णाहुतिमाचार्यःकुर्य्यादिति॥ ततउपविश्य । स्रुवेणभस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना ॐत्र्यायुषं जमदग्नेरितिललाटे । ॐकश्यपस्यत्र्यायुषमितिग्रीवायाम् । ॐयद्देवेषुत्र्यायुषमिति दक्षिणबाहुमूले । ॐतन्नोऽअस्तुत्र्यायुषमितिहृदि ॥ अनेनैवक्रमेण कुमारललाटादावपि । तत्रतन्नो इत्यस्य स्थानेतत्ते इतिविशेषः॥ ततोमूर्द्धाक्षतादिग्रहणम्।

इतिश्रीमहामत्तकमहासामंताधिपतिश्रीरामदत्तविरचिता वाजसनेयिनामुपनयनपद्धतिः समाप्ता । शुभम् ॥

१ यह मंत्र यजु. अध्याय ७ मंत्र २४ का है ॥

गीत (राग) वादित्र (बाजा) नृत्य नर्तन (नाच) इनका त्याग करना और वहाँ न जाना । प्र०गृह्यसू० पारस्कर.२ कांड । (अथ स्नातकस्य यमान्वक्ष्यामः कामादितरो गीतवादित्राणि न कुर्यात्) अर्थ–विना-कामचेष्टाके गीत वादित्रआदि नकरे॥ क्षेमकल्याणके होनेपर रात्रिमें अन्यग्राम (नगर) को नजावे अर्थात् अत्यावश्यमें निषेध नहीं ॥ और धावन (भागना)छोड़ दे । और कूपके जलको नम्र होकर ऊपरस्थित हो न देखे । वृक्षपर चढे नहीं । फलोंको न तोडे । अमार्ग (कुराह) से नचले और नग्न होकर स्नान न करे । और जिस स्थानके गिरनेका संशयहो वहां न शयनकरे ॥ प्रातःकाल और सायंकाल न शयन करे । और विषमभूमि–ऊँची नीची पृथिवीका लंघन न करे । अश्लील दुर्वाक्य वा ग्राम्य शब्द न कहे । उदयास्तकालमें सूर्यको न देखे ॥ जलमें खडाहो आकाशमें सूर्यको न देखे॥ वृष्टि होनेपर न जावे यदि अत्यावश्य होतो छत्र धारण कर जावे ॥ जलमें अपना मुख न देखे ॥ और जिसके रोम नहीं परंतु पुरुषाकृति प्रमत्त पंढ (नपुंसक)के साथ गमन न करे ॥ इत्यादि अयोग्यपुरुष व्यवाय न करे ॥ इत्यादि वेद शास्त्र लोकविरुद्ध बातें त्याग दे ॥ इनके अनंतर गुरुजीको भूयसी (बहुत) दक्षिणा दे।अभावमें यथाशक्ति दे ॥

और (मूर्द्धानं दिवो अरतिं) इसमंत्रसे फल पुष्पादिसे युक्त घृतसे पूर्णाहुति करे। (प्र० पूर्णाहुतिमुत्तमांजुहोति) त्र्यायुषं इसमंत्रसे ललाट ग्रीवा दक्षिणबाहु हृदयमें स्रुवसे हवनकी भस्म ले अनामिकासे लगावे अपने और शिष्यके गुरु । अनंतर शिष्यके मस्तकपर गुरु अक्षत पुष्प आदिकोंका आरोपण करे ॥ इति श्रीः ॥

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीजगज्जीतसिंहरक्षितशतद्रु-विपाशांतर्गतराजधानीकर्पूरस्थलनिवासिगोतमगोत्रा-(शोरि) न्वयालंकृत-श्रीमच्छ्रीतुलसीरामात्मजदैव-ज्ञचूडामणिपंडितवर्य्यश्रीदुनिचंद्रात्मजसर्वबंधुश्रीयुतप-ण्डितविष्णुदत्तवैदिककृतोपनयनवेदारंभसमावर्तनपद्ध-तिटीका स्वरयुगाङ्कचंद्रमिते वैक्रमे १९४७फाल्गुन कृष्णैकादश्यां भृगुवासरे समाप्तिमगात् ॥ शुभमस्तु श्रीरामचंद्रसगुणब्रह्मप्रसादात् ॥

(इति चतुर्थं प्रकरणं समाप्तम्)

(अथ प्रकीर्णप्रकरणमारभ्यते)

नमो गणेशाय ।

अथोङ्कारनिरूपणम् ।

योगियाज्ञवल्क्यः ।

प्रणवाद्याः स्मृता मन्त्राश्चतुर्वर्गफलप्रदाः । तस्माच्च निसृताः सर्वे प्रलीयंते च तत्र वै ॥ माङ्गल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकामप्रसाधनम् । ओंकारः परमं ब्रह्म सर्वमंत्रेषु नायकः ॥ प्रजापतेर्मुखोत्पन्नस्तपःसिद्धस्य वै पुरा ॥ यथा पर्णं पलाशस्य शंकुनैकेन धार्य्यते । तथा जगदिदं सर्वमोङ्कारेणैव धार्य्यते ॥ जपेन दहते पापं प्राणायामैस्तथा मलम् । ध्यानेन जन्म निर्यातं धारणाभिश्च मुच्यते ॥

मनुराह च ।

अकारं चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः ।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवःस्वरितीति च ॥

गीतायाम् ।

ओंतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः । प्रवर्त्तंते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

योगियाज्ञवल्क्यः ।

सिद्धानां चैव सर्वेषां वेदवेदान्तयोस्तथा । अन्येषा-
ऽपि शास्त्राणां निष्ठाप्योङ्कार उच्यते ॥ प्रणवाद्या यतो
वेदाः प्रणवे पर्युपस्थिताः । वाङ्मयं प्रणवः सर्वं तस्मा-
त्प्रणवमभ्यसेत् ॥ आद्यं यत्राक्षरं ब्रह्म त्रयो यत्र प्रति-
ष्ठिताः । स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद् वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥
एक एव तु विज्ञेयः प्रणवो योगसाधनम् । गृहीतं सर्व-
सिद्धान्तैरितरैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ वेदभारभरार्तो यः स वै
ब्राह्मणगर्दभः।योवेत्ति ब्रह्म गोप्यंतं त्रिमात्रार्द्धेषु तिष्ठति ।

स एव ।

यथाऽमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम्।तथोङ्कार-
विधिज्ञस्य ज्ञानतृप्तिर्न विद्यते ॥ सर्वमंत्रप्रयोगेषु ओमि-
त्यादौ प्रयुज्यते । तेन संपरिपूर्णानि यथोक्तानि भव-
न्ति हि ॥ यन्न्यूनमतिरिक्तञ्च यच्छिद्रं यदयज्ञियम् । य-
दमेध्यमशुद्धञ्च यातयामं च यद्भवेत् । तत्तदोङ्कार-
युक्तेन मंत्रेणाविफलं भवेत् ॥

स एव ।

त्रिमात्रस्तु प्रयोक्तव्यः सर्वारम्भेषु कर्मसु । तिस्रः
सार्द्धास्तु कर्तव्या मात्रास्तत्रार्थचिंतकैः ॥ देवताध्या-
नकाले तु प्लुतं कुर्यान्न संशयः । तैलधारावदच्छिन्नं
दीर्घघंटानिनादवत् । अप्लुतं प्रणवस्यान्तं यस्तं वेद स
वेदवित् ॥

ओंकारस्य विनियोगमाह व्यासः ।

प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री छंद एव च ।.देवोग्निः सर्वकार्य्येषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥एवमार्षादिकं स्मृत्वा तत ओंकारमभ्यसेत् । सार्द्धं त्रिमात्रमुच्चार्य्य दीर्घघं टानिनादवत् ॥

ध्यानप्रकारमाह छन्दोगः ।

स्वदेहमरणिंकृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मन्थनाद्विष्णुं पश्येदग्निनिगूढवत् ॥

गीतायां भगवद्वाक्यम् ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

छन्दोगगृह्यपरिशिष्टे ॐकाराद्दतेनिरर्थकत्वप्रतिपादनम्
यदोङ्कारमकृत्वातु किञ्चिदारभ्यते तद्व्यर्थं भवति तस्माद्व्यर्थभयाद्धीत ओंकारं पूर्वमारभेत् ॥

तमेवानुवदति छन्दोगपरिशिष्टे ।

ॐकारपूर्वंहि योगोपासनं यानि नित्यानि पुण्यतमानिकर्म्माणि दानयज्ञतपःस्वाध्यायजपध्यानसन्ध्योपासनप्राणायामहोमदेवपितृमंत्रोच्चारणब्रह्मारंभादियच्चान्यत् किञ्चित् सर्वं प्रणवमुच्चार्य्य प्रवर्तयेत् समापयेच्च ॥ इति । ब्रह्मशब्देन वेदास्तेषामारम्भः ॥

तत्रैव ।

स्वरितोदात्त एकाक्षर ओङ्कार ऋग्वेदे, त्रैस्वर्योदात्त

ओङ्कारो यजुर्वेदे। दीर्घोदात्त एकाक्षरःसामवेदे। संक्षिप्तोदात्त एकाक्षर ओङ्कारः अथर्ववेदे ॥

अथ ओङ्कारस्य मात्राविशेषाभिधानफलं प्रश्नोपनिषदि निर्णीतं यथा ॥

एतद्वै सत्यकामः । परञ्चापरं ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति । स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैवसंवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया सम्पनो महिमानमनुभवति। अथयदि द्विमात्रेण मनसि संपद्यते सोंतरिक्षं यजुभिरुन्नीयते। ससोमलोकम्। ससोमलोकेविभूतिमनुभूय पुनरावर्तते। यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परंपुरुषमभिध्यायीत। सतेजसि सूर्येसंपन्नः। यथापादोदरस्त्वचाविनिर्मुच्यत एवं ह वै सपाप्मना विनिर्मुक्तः ससामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं सएतस्माज्जीवघनात् परात् परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते । तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्यान्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तस्तु न कंपतेज्ञः।ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं ससामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयंपरञ्चेति ॥ इतिश्रीदैवज्ञदुनि

चंद्रात्मज [शोरि] कर्पूरस्थलनिवासिपण्डितवर्यवि-
ष्णुदत्तसंगृहीतं ॐकारनिरूपणं समाप्तम् ॥

अथ वेदस्यअनध्यायमाह ।

(याज्ञवल्क्यस्मृतौ प्रथमाध्याये)

त्र्यहंप्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धु
षु ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखा-
श्रोत्रिये तथा ॥ संध्यागर्जितनिर्घातभू
कंपोल्कानिपातने ॥ समाप्य वेदं द्युनि
शमारण्यकमधीत्यच ॥ पञ्चदश्यां च
तुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके । ऋतुसंधिषु
भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च॥पशुम
ण्डूकनकुलमार्जाराश्वाऽहिमूषकैः । कृते
न्तरेत्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ श्व-
क्रोष्टगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ॥
अमेध्यशवशूद्रांतश्मशानपतितांतिके ॥
देशेऽशुचावात्मनिचविद्युत्स्तनितसंप्लुवे
भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेतिमारुते ॥
पांसुवर्षे दिशो दाहे संध्यानीहारभीतिषु ।
धावतः पूतिगन्धेच शिष्टे च गृहमागते ।

खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहिणे।सप्त
त्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः॥

शिष्य-ऋत्विक्-गुरु और बंधु इनके मरनेपर और उपाकर्म वेदोंका आरंभ भाद्रमासमें। उत्सर्ग पौष मासमें वेदोंके उत्सर्गमें जो अपनी शाखाका उसीको दूसराभी पढताहो और मरजाय तोभी तीन दिनका अनध्याय होताहै ॥ संध्यासमय मेघगर्जताहो आकाशमेंकोई उत्पात शब्द हो भूकंपन । उल्कापतन (ताराकाटूटना) और वेदसमाप्तकर वा आरण्यक पढ चुकेहो तो एक दिनरात्र अनध्याय होताहै ॥ अमावस, पूर्णिमा, चौदश, अष्टमी, चंद्रसूर्यका ग्रहण और जिसप्रतिपत्को ऋतुओंका आरंभहो; और श्राद्धमें भोजनकर वा दान लियाहो तो भी एक दिनरात्र अनध्यायकरना ॥ कोई पशु मेढक डहू नेवल कुत्ता सर्प विडाल और मूसा यदि पढनेपढानेवालोंके मध्यसे निकलजावे और इंद्रध्वज जो संवत्सरके फल ज्ञानके लिये खडीकरीजाय वा उतारे तो एक दिनरात्रि अनध्याय होताहै ॥ श्वान सृगाल गर्दभ उलूक पक्षी सामवेदवंशी और आतुरपुरुषका शब्द सुनपडे कोई अपवित्र वस्तु मृतक शूद्र अंत्यज (चंडाल) श्मशान और पतित ये समीपहों वा इनके समीप ॥ अप-

वित्र देश भूमि अशुद्ध देह हो । वारंवार विजली चमके वारंवार मेघ गर्जे । भोजन करनेसे गीले हाथ हों जलके बीच खडाहो आधीरात्रिमें और बहुत वायु बहतीहो । धूलिवर्षती हो । दिगदाह हो । संध्यासवेरेके धुंधमें कोई भय हो दौडता जाता दुर्गंध आतीहो कोई शिष्ट अपने घर आजाय गर्दभ ऊंट रथ हाथी घोडा नौका वृक्ष और ऊपरभूमि इनपर स्थित हो तो तत्काल वेद न पढे ॥ यह तेंतीस अनध्याय उतना काल हो तेहैं जबतक इनकी संभावना रहै ॥ जैसे धूलि वर्षती हो तो अनध्याय धूलिके नाश होनेपर वेदका पढना इत्यादि ॥

इति श्रीदैवज्ञदुनिचंद्रात्मज पं० विष्णुदत्तसंगृहीतं वेदानामनध्यायप्रकरणं समाप्तम् ॥

ॐस्वस्ति श्रीगणेशायनमः ॥ अथयज्ञोपवीतधारणप्रकारमाह ॥ सूतकेमृतके चैव गते मासचतुष्टये । नवयज्ञोपवीतानि धृत्वा जीर्णानि संत्यजेत् ॥

अर्थात् सूतक पातकमें और चारमासके अनंतर नवीन यज्ञोपवीत धारणकर जीर्णको त्यागदें ॥

अन्यच्च॥ कठाः काण्वाश्च चरका विप्रा वाजसनेयकाः। बह्वृचाः सामगाश्चैव

येचान्ये यजुः शाखिनः। कण्ठादुत्तीय्य सूत्रं तु पुनः संस्कारमर्हति॥

अर्थ-कठशाखाके काण्वशाखाके चरकशाखाके वाजसनेयी शाखाके बहृच (ऋग्वदी)सामवेदी और जो यजुर्वेदी शाखावाले वह कंठसे यज्ञोपवीत उतार कर फिर संस्कारके योग्य हो जातेहैं॥

अथ यज्ञोपवीतनिर्माणप्रकरणम्।

छंदोगपरिशिष्टे॥ पा० गृ० सूत्रेहरिहर भाष्ये॥ त्रिवृदूर्ध्वं वृतंकार्यं तन्तुत्रय मधो वृतम्। त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्त स्यैको ग्रंथिरिष्यते। आवेष्टय षण्णवत्या तत्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥ अलिङ्गकै स्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतंचतत्। अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्या त्रिगुणीकृ तम्॥ अधः प्रदक्षिणावृत्तं समंस्यान्नवसू त्रकम्। त्रिरावेष्टय दृढं बद्ध्वा। हरिब्रह्मेश्वरा न्नमन्। (यज्ञोपवीतं परममितिमंत्रेण धारयेत)सूत्रंसलोमकंचेत्स्यात्ततः कृत्वा त्वलोमकम्।सावित्र्या दशकृत्वोद्भिर्मन्त्रि

ताभिस्तदुक्षयेत । विच्छिन्नं वाप्यधोयातं मुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् । स्तनादूर्ध्वम धोनाभेर्न धार्य्यं तत्कथंचन ।

(मन्यामाह तत्र)

ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा । तृतीयमुत्तरीयं वा वस्त्राभावे तदिष्यते ॥ ब्रह्मसूत्रेऽपसव्येंसे स्थिते यज्ञोपवीतिता । प्राचीनावीतिता सव्ये कंठस्थे तु निवीतिता ॥ अन्यच्च ॥ कृते पद्ममयं सूत्रं त्रेतायां कनकोद्भवम् । द्वापरे राजतं प्रोक्तं कलौ कार्पाससंभवम् ॥ अन्यच्च ॥ विना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिवते द्विजः । उपवासेन चैकेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ विना यज्ञोपवीतेन विण्मूत्रोत्सर्गकृद्यदि । उपवासद्वयं कृत्वा दानैर्होमैस्तु शुद्ध्यति ॥ संग्रहे–उपाकर्मणि चोत्सर्गे गते मास चतुष्टये । नवयज्ञोपवीतानि धृत्वा पूर्वाणि संत्यजेत् ॥ पूर्वयज्ञोपवीतानि शिरोमार्गेण संत्यजेदिति ॥

अथ यज्ञोपवीतधारणप्रयोगः ।

आचम्य प्राणानायम्य । संकल्पः ॥ अद्येत्यादिममश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं यज्ञोपवीतधारणमहं करिष्ये । सूत्रत्रिगुणीकरणम् । इदंविष्णुरितिमेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। गायत्रीच्छंदः। सूत्रत्रिगुणीकरणे विनियोगः॥ ॐइदंविष्णुर्विचंक्रमेत्रेधानिदंधेपुदम्। समूढमस्य पाꣳसुरेस्वाहा। १ $\frac{१५}{५}$ । प्रक्षालनम्। आपोहिष्ठेतितिमृणां सिंधुद्वीप ऋषिः। आपो देवता। गायत्रीच्छंदः। यज्ञोपवीतप्रक्षालने विनियोगः। ॐआपोहिष्ठामयोभुवुस्तानऽऊर्ज्जेदधातन । महेरणायुचक्षसे । २ $\frac{१४}{३६}$ । ॐयोवं÷शिवतंमोरसुस्तस्यं भाजयतेहन÷। उशुतीरिंव मातर÷३ $\frac{१}{३६}$ । ॐ तस्माऽअरंङ्गमामवोयस्यक्षयायुजिन्वंथ । आपोजनयथाचनः ।४ $\frac{१६}{३६}$ । ततो यज्ञोप

वीतानि प्रक्षाल्यानंतरं दशगायत्रीमन्त्रै रभिमंत्र्य तन्तुदेवतानामावाहनं कुर्यात्॥ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः । परमात्मा वता । गायत्रीच्छन्दः । प्रथमतन्तौॐकारावाहने विनियोगः । ॐप्रथमतंतौ ॐकारायनमः ॐकारमावाहयामि । अग्निं-दूतमितिमेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्रीच्छन्दः । द्वितीयतन्तौ अग्न्यावाहनेविनियोगः । ॐ अग्निन्दूतम्पुरोदधेह व्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ॥ऽआसादयादिह । ५१७/२२ । द्वितीयतन्तौ अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ नमोस्तु सर्पेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सर्पा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । तृतीयतंतौ सर्पावाहने विनियोगः ॥ ॐनमोऽस्तु सर्पेभ्योयेकेच पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षेयेदिवि तेभ्यः सर्पेभ्योनमः ६१६/१३ । तृतीयतन्तौसर्पेभ्योनमः सर्पानावा० । वय॥सोमेत्यस्य बन्धु

ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्रीच्छंदः ।
चतुर्थतन्तौ सोमावाहने विनियोगः॥ॐ
व्वयꣳसोम व्व्रतेतवमनस्तनूषुविब्भ्रतः
प्रजावन्तꣳसचेमहि ॥ ७३ । चतुर्थतन्तौ
सोमाय नमः सोममावा०॥उदीरतामि
त्यस्य शंखऋषिः पितरोदेवता त्रिष्टुप्
छंदः॥पंचमतन्तौपित्रावाहनेविनियोगः॥
ॐ उदीरतामवरऽउत्परासऽउन्मध्य-
माः पितरः सोम्यासः ॥ असुंयऽईयुर
वृकाऽऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरो हवेषु॥
४९/१९ ॥पंचमतन्तौपितृभ्योनमः पितॄना०
प्रजापतेइत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः प्र
जापतिर्देवता त्रिष्टुप्छंदः षष्ठतन्तौ
प्रजापत्यावाहने विनियोगः॥ॐप्रजापते
नत्वदेतान्यन्यो विश्वारूपाणिपरिताब
भूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु
व्वयꣳस्यामपतयो रयीणाम्॥ ९ ४५/२३ ॥षष्ठ

तन्तौ प्रजापतये नमः प्रजापतिमावा०॥ आनोनियुद्भिरित्यस्य वसिष्ठऋषिः। अनिलोदेवता । त्रिष्टुप्छंदः । सप्तमतंतौ अनिलावाहने विनियोगः ॥ ॐआनो नियुद्भिः॑शतिनीभिरध्वर॑सहस्रिणीभिरुपयाहियज्ञम् । व्वायोऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयम्पातःस्वस्तिभिःसदानः॥ १०॥ सप्तमतन्तौ अनिलायनमः अनिलमावा०।सुगावइत्यस्यात्रिऋषिःगृहपतयो देवताःआर्षी त्रिष्टप्छंदःअष्टमतन्तौ यमावाहनेविनियोगः।ॐसुगावा देवाः सदनाऽअकर्म्मयऽआजग्मेद॑ सवनञ्जुषाणाः ॥ भरमाणा व्वहमानाहवी॑ष्यस्मेधत्तव्वसव्वोव्वसूनिस्वाहा ११ अष्टमतन्तौ यमायनमः यममावा०॥ विश्वेदेवासऽआगत इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः विश्वेदेवा देवताःत्रिष्टुप्छंदः

नवमतन्तौ विश्वेषां देवानामावाहने वि
नियोगः ॥ ॐ विश्वे देवास ऽआगत श्रृ
णुतामऽइम हवंम् । एदम्बर्हिर्निषीदत
१२ [३४] नवमतन्तौ विश्वेभ्यो देवेभ्योनमः
विश्वान् देवानावा० यज्ञोपवीतग्रंथिदेवता
वाहनम् । ब्रह्मजज्ञानमित्यस्यप्रजापति
ऋषिः ब्रह्मादेवता त्रिष्टुपछंदः ग्रन्थिमध्ये
ब्रह्मावाहने विनियोगः ॥ ॐ ब्रह्मजज्ञान
म्प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेनऽ
आवः ॥ सबुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः
सतश्चयोनिमसतश्च विवः १२ [३/३] । इदं
विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः विष्णु
र्देवता गायत्रीच्छंदः । ग्रंथिमध्ये वि
ष्णवावाहने विनियोगः ॥ ॐ इदं विष्णु-
र्विचंक्रमेत्रेधा निदंधेपदम् ॥ समूढम-
स्यपांसुरेस्वाहा १४ [१५] । त्र्यंबकमि
त्यस्य वसिष्ठ ऋषिः रुद्रो देवता विराट्

ब्राह्मी अनुष्टुप्छंदः ग्रंथिमध्ये रुद्रावाहने विनियोगः ॥ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ॥ उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीयमामृतात् । १५ ६०

यज्ञोपवीतग्रंथिदेवताभ्योनमः ग्रंथिदेवता आवाहयामि । प्रणवाद्यावाहितदेवताभ्योनमः यथास्थानमहं न्यसामि । मानसोपचारैः संपूज्य । अथध्यानम् । प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रंकार्पाससूत्रोद्भवब्रह्मसूत्रम् । ब्रह्मत्वसिद्धयै च यशःप्रकाशं जपस्यसिद्धिं कुरु ब्रह्मसूत्रम् ॥ ॐ युवासुवासाः परिवीत आगातसउश्रेयान्भवतिजायमानः ॥ तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ यज्ञोपवीतधारणम् ॥ यज्ञोपवीतमिति मंत्रस्य परमेष्ठीऋषिः लिंगोक्तादेवताः । त्रिष्टुपछंदः यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः ॥ ॐयज्ञोपवीतंपरमंपवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं

प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीते नोपनह्यामि । अनेनमंत्रेण यज्ञोपवीता नां पृथक्पृथग्धारणं कुर्यात् । प्रतियज्ञो पवीतधारणस्य आद्यन्तयोराचमनम् ॥ धारणान्ते जीर्णसूत्रत्यागमंत्रं पठेत् ॥ तद्यथा-एतावद्दिनपर्यंतं ब्रह्मत्वं धारितं मया । जीर्णत्वात्त्वंपरित्यक्तं गच्छ सूत्र यथासुखम् ॥ इतिमंत्रेणजीर्णयज्ञोपवीतं शिरोमार्गेण निःसार्य भूमौ त्यजेत् ॥ पश्चाद्यथाशक्ति गायत्रीमंत्रजपंकुर्यात् ॥ अर्पणम् । अनेननवयज्ञोपवीतधारणार्थं कृतेन यथाशक्ति गायत्रीजपकर्मणा श्रीसविता देवता प्रीयतां नंमम ॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ यस्य॰इतियज्ञोपवी तधारणप्रयोगः ॥

आचमन पूर्वक प्राणायामकर संकल्प करे (अद्ये-त्यादि देश कालसंकीर्तनकरे ॥ इदंविष्णु॰ इसमंत्रसे सूत्रको त्रिगुण करना । और आपोहिष्ठा इत्यादि तीन

मंत्रोंसे यज्ञोपवीतका प्रक्षालन करना ॥ इनकाअर्थ पीछे लिखाहै ॥

अथ संक्षेपतो यज्ञोपवीतधारणप्रयोगः। यज्ञोपवीतान्युदकेन प्रक्षाल्यानन्तरमाचम्य प्राणानायम्य (संकल्पः) अद्येत्यादि मम श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थममुककर्माङ्गत्वेननवीनयज्ञोपवीतधारणमहं करिष्ये । इतिसंकल्प्य यज्ञोपवीतानि करसंपुटेदशगायत्रीमंत्रैरभिमंत्रयेत् । तदनंतरम् ॐ यज्ञोपवीतंपरमंपवित्रंप्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः । ॐयज्ञोपवीतमसियज्ञस्यत्वायज्ञोपवीतेनोपनह्यामि इतिमंत्रौपठित्वापृथक् पृथक् यज्ञोपवीतानि सव्यहस्तद्वाराधार्य्याणि ॥ प्रति यज्ञोपवीतधारणान्ते आचम्य । पश्चात् यथाशक्तिगायत्रीजंपेत्। ततोजीर्णयज्ञोपवीतत्यागः कार्य्यः (अर्पणम्)अनेन

नवयज्ञोपवीतधारणार्थं कृतेन यथाश क्ति गायत्रीजपाख्येन कर्मणा श्रीसूर्य नारायणः प्रीयतां नमम ॐतत्सद्ब्रह्मा०॥

इति संक्षेपतोयज्ञोपवीतधारणप्रयोगः॥

यदि पूर्वोक्त यज्ञोपवीत धारण प्रयोग कार्यान्तरसे न हो तो इससे अवश्य यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये॥ आपोहिष्ठा इत्यादि तीनोंमंत्रोंसे प्रक्षालनकर अनं- तर दशगायत्री मंत्रसे अभिमंत्रण करे॥ पीछेसे प्रथम तंतुसे ॐकारका आवाहन करे । और अग्निदूतं इसमं- त्रसे द्वितीयतन्तुमें अग्निका आवाहन करे। नमोस्तुस- र्पेभ्य इसमंत्रसे तृतीय तंतुमें सर्पोंका आवाहन करे ॥ और वयꣳसोम इस मंत्रसे चतुर्थतन्तुमें सोमका आवाहन करे॥उदीरता इस मंत्रसे पंचम तन्तुमें पितरोंका आवाह न करे ॥ प्रजापते इस मंत्रसे षष्ठतन्तुमें प्रजापतिजीका आवाहन करे ॥ आनोनियुद्भिः इसमत्रंसे सप्तमतंतुमें अनिल (वायु) का आवाहन करे ॥ सुगावो इसमंत्रसे अष्टमतंतुमें यम (धर्मराज) का आवाहन करे ॥ विश्वे देवा इसमंत्रसे सर्वदेवताओंका आवाहन नवमतंतुमें करे ॥ यथा प्रमाण छंदोगपरिशिष्टे ॐकारः प्रथमेतंतौ द्वितीयेऽग्निस्तथैव च। तृतीये नागदैवत्यं. चतुर्थे सोम देवता ॥ पंचमे पितृदैवत्यं पष्ठे चैव प्रजापतिः ॥ सप्तमे

मारुतश्चैव अष्टमे सूर्यमेवं च ॥ सर्वेदेवास्तु नवम इत्ये तास्तन्तुदेवताः इति ॥ इदंविष्णु इसमंत्रसे ग्रंथिमध्यमें विष्णुका आवाहन करना॥त्र्यंबकं इसमंत्रसे रुद्रजीका आवाहन करना ॥ अनंतर ध्यान प्रजापते इसमंत्रसे। अर्थ–ब्रह्माजीके साथ उत्पन्न भया पवित्र श्रेष्ठकार्पास (कपास) से रचित हे ब्रह्मसूत्र आप जपकी सिद्धि यश का प्रकाश करो। युवा सुवासा०इसमंत्रका अर्थ समा: वर्तन प्रकरणमें लिखाहै ॥ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं इस मंत्रसे सव्य हस्तसे यज्ञोपवीत पृथक् पृथक् धारण करे प्रति यज्ञोपवीतके आदिअंतमें आचमन करना॥ धार- णकर जीर्ण पुरातन यज्ञोपवीत शिरोभागसे एतावद्दि- नपर्यंतं इस मंत्रसे त्यागन करे ॥ पश्चात् यथाशक्ति गायत्रीजप करे॥. अनंतर जपको श्रीसूर्यनारायणके अर्पण करे॥इति श्रीगौतमगोत्रा–(शौरि) न्वयालंकृत दैवज्ञदुनिचंद्रात्मजपण्डितविष्णुदत्तकृता यज्ञोपवीत धारणप्रयोगटीका समाप्ता। शुभं भूयात् सर्वान्तर्यामि परमेश्वरप्रसादात् ॥ अनेन कर्मणा परमेश्वरः प्रीयताम्। तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

इति यज्ञोपवीतधारणप्रयोगटीका समाप्ता।

---

१ सर्वे एव च इति क्वचित् पाठः ।

॥ श्रीः ॥

अथ उपनयनसूत्रेपारस्करः ।

पारस्कर गृह्यसूत्र काण्ड २ द्वितीयसूत्र ३।४।५।६।७।८।९।१०॥ प र्यन्त ॥

तद्यथा ।

अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमेवैकादश वर्षंराजन्यं द्वादशवर्षंवैश्यंयथामंगलं वा सर्वेषां ब्राह्मणान्भोजयेत्तञ्चपर्युप्त शिरसमलंकृतमानयन्ति ॥ पश्चादग्नेरव स्थाप्यब्रह्मचर्यमागामिति वाचयति ॥ ब्रह्मचार्यसानीतिचाथैनंवासः परिधापय ति येनेंद्रायबृहस्पतिर्वासःपर्यदधामृतम्। तेनत्वापरिदधाम्यायुपेदीर्घायुत्वायबलाय वर्चस इति मेखलां बध्नीत। इयंदुरुक्तंपरिबा धमाना वर्णंपवित्रंपुनतीमआऽगात् । प्रा णापानाभ्यां बलमाऽधानास्वसा देवी सुभगामेखलेयमिति। युवा सुवासाः परि

वीतऽआगात्सउश्रेयान्भवतिजायमानः। तंधीरासः कवय उन्नयंतिस्वाध्यो मनसादेवयंत इति वा तूष्णीं वात्र यज्ञो पवीतपरिधानम्।यज्ञोपवीतं परमंपवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्य मग्र्यंप्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । यज्ञोपवीतमसियज्ञस्यत्वायज्ञो पवीतेनोपनह्यामीत्यथाजिनं प्रयच्छति मित्रस्य चक्षुर्द्धरुणं बलीयस्तेजोयश स्वीस्थविर ँसमिद्धम् । अनाहनस्यं वसनंजरिष्णुः परीदं वाज्यजिनंदधेह मिति तूष्णीं वा दंडं प्रयच्छति तं प्रतिगृ ह्णाति योमेदण्डः परापतद्वैहायसो धिभूम्याम् । तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति दीक्षावदेकेदीर्घस त्रमुपैतीति वचनादथास्याद्भिरञ्जलिना ञ्जलिपूरयत्यापोहिष्ठेतितिसृभिरथैनँ

ॐसमधि हृदयमालभतेममव्रतेतेहृदयं द
धामि।ममचित्तमनुचित्तन्ते अस्तु।ममवाच
मेकमनाजुषस्व बृहस्पतिष्ट्वानियुनक्तुम-
ह्यमित्यथास्यदक्षिण ॐहस्तं गृहीत्वाह
कोनामासीत्यसावहंभो ३ इतिप्रत्याहा-
थैनमाह कस्यब्रह्मचार्यसि भवत इत्यु
च्यमान इंद्रस्यब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्त
वाहमाचार्यस्तवासावित्यथैनं भूतेभ्यः
परिददाति प्रजापतयेत्वापरिददामि ।
सर्वेभ्यस्त्वाभूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्या
ऽइति ॥ ३ ॥ प्रदक्षिणमग्निं परीत्यो
पविशत्यन्वारब्धआज्याहुतीर्हुत्वा प्रा
शनांतेथैनॐसॐशास्तिब्रह्मचार्यस्यपो
शानकर्मकुरु मा दिवासुषुप्था वाचंयच्छ
समिधमाधेह्यपोशानेत्यथास्मै सावित्री
मन्वाहोत्तरतोग्नेःप्रत्यङ्मुखायोपविष्टा
योपसन्नाय समीक्ष्यमाणाय समीक्षिता
यदक्षिणतस्तिष्ठतआसीनायवैके पच्छो

र्द्धर्चशः सर्वाञ्चतृतीयेनसहानुवर्तयन् संवत्सरे षण्मास्ये चतुर्विंᳬशत्यहे द्वादशाहे षडहेत्र्यहेवासद्यस्त्वेवगायत्रीं ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वैब्राह्मणइति श्रुतेस्त्रिष्टुभᳬराजन्यस्यजगतींवैश्यस्य सर्वेषांवागायत्रीमत्रसमिदाधानम् पाणि नाग्निपरिसमूहत्यग्नेसुश्रवः सुश्रवसंमाकु रु ॥ यथात्वमग्नेसुश्रवः सुश्रवाअस्येवंमा ᳬसुश्रवस्सौश्रवसंकुरु यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्यनिधिपाअस्येवमहं मनुष्याणांवे दस्यनिधिपो भूयासमिति प्रदक्षिणम ग्निपर्युक्ष्योत्तिष्ठन्त्समिधमादधात्यग्नये समिधमाहार्षंबृहते जातवेदसे ॥ यथा त्वमग्ने समिधासमिध्यसऽएवमहमायु षामेधयाब्रह्मवर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्र ह्मवर्चसेनसमिंधेजीवपुत्रोममाचार्यो मे धाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वीतेज स्वीब्रह्मवर्चस्यन्नादोभूयासᳬस्वाहेत्येवं द्वितीयांतथातृतीयामेषातऽइतिवासमुच्च

योवापूर्ववत्समूहनपर्युक्षणे पाणीप्रतप्य
मुखंविमृष्टे ॐ तनूपाअग्नेसितन्वंमेपाहि
ह्यायुर्दाऽअग्नेस्यायुर्मेदेहि वर्चोदाऽअग्नेसि
वर्चोमेदेहि अग्नेयन्मेतन्वाऽऊनन्तन्म
आपृण मेधांमेदेवः सविता आदधातु
मेधांदेवी सरस्वतीआदधातुमेधामश्वि
नौदेवावाधत्तां पुष्करस्रजाविति मेधां
मेतिद्वाभ्यांततअंगान्यालभ्यजपत्यंगा
निचमआप्यायतां वाक्प्राणश्चक्षुः श्रो
त्रं यशो बलमिति त्र्यायुपाणिकरोति
भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणꣳ से
हृदिचत्र्यायुषमिति प्रतिमंत्रम् ॥ ५ ॥
अत्रभिक्षाचर्यचरणम् । भवत्पूर्वां ब्राह्म
णोभिक्षेतभवन्मध्याꣳराजन्यो भवदं
त्यांवैश्यस्तिस्रोऽप्रत्याख्यायिन्यःषड्द्वा
दशापरिमिता वा मातरं प्रथमामेक आ
चर्याय भैक्षं निवेदयित्वा वाग्य
तोहःशेषंतिष्ठेदित्येकेऽहिꣳसन्नरण्यात्स

शीस्यात्सावित्रꣳ षड्रात्रंत्रिरात्रꣳसद्यः
काले वाचरेत्तदेवव्रतमुदीक्ष्य दण्डमपो
निधाय मेखलां यज्ञोपवीतं चाप्स्वन्तरि
तिप्रत्यृचंनमोवरुणायेति त्रिमधुरंदत्त्वा
ततोऽस्याग्नेयं प्रथमं वेदव्रतमादिशेद्ब्राह्म
णक्षत्त्रियविशांपंचसांवत्सरिकाणि वेदव्र
तानिभवंत्याग्नेयꣳशुक्रियादिषुशुक्रिय
ꣳशुक्राभिःश्रावयेदौपनिषदमौपनिषद्भिः
शौलभꣳशौलभिनीभिरथवा विद्यमान
ऽआव्रह्मन्नुमुदीरतामानोभद्राऽआशुः शि
शानऽइमानुकमितिच वेदशिरसावगुंठ
येवगुंठनीं च गोदाने गोमिथुनंतस्माद्गोदा
नमिति॥७॥वेदꣳसमाप्यस्नायाद्ब्रह्मचर्यं
वाष्टाचत्वारिꣳशकंद्वादशकेप्येके गुरुणा
नुज्ञातोविधिर्विधेयश्चतर्कः षडंगमेकेन
कल्पमात्रकामं तु याज्ञिकस्योपसंगृह्य
गुरुꣳ समिधोभ्याधायपरिश्रितस्योत्त
रतः कुशेषु प्रागग्रेषुपुरस्तात्स्थित्वाऽ
ष्टानामुदकुंभानां येप्स्वंतरग्नयः प्रविष्टा

गोह्यऽउपगोह्योमयूपोमनोहास्खलो वि
रुजस्तनुडुषुरिंद्रियहान्विजहामि योरो
चनस्तमिहगृह्णामीत्येकस्मादपो गृहीत्वा
तेनाभिषिंचतेतेनाहमभिषिंचामिश्रियैयश
सेब्रह्मणेब्रह्मवर्चसायेतियेनश्रियमकृणुतां
येनावमृशताᳬंसुरांयेनाक्ष्यावभ्यषिंचतां
यद्वा तदश्विनायशऽइत्यापोहिष्ठेति च
प्रत्यृचंत्रिभिस्तूष्णीमितरैरुद्धुत्तममितिमे
खलांप्रमुच्य दण्डंनिधाय वासोन्यत्परि
धायादित्यमुपऽतिष्ठत उद्यन्भ्राजिष्णुरि
न्द्रोमरुद्भिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं
माकुर्वांविदन्मागमयोद्यन् भ्राजिष्णुरि
न्द्रो मरुद्भिरस्थात्सायंयावभिरस्थात्स
हस्रसनिरसि सहस्रसनिंमाकुर्वांविदन्मा
गमयेतिदधितिलान्वा प्राश्य जटालोम
नखान् स ॅ हृत्यौदुम्बरेण दंतान्धावे
तान्नाद्यायᳲ हध्व ᳬसोमोराजायमागमत्
समेमुखं प्रमाक्ष्यते यशसा च भगेनचे

शीस्यात्सावित्रꣳ षड्रात्रंत्रिरात्रꣳसद्यः काले वाचरेत्तद्देवव्रतमुदीक्ष्य दण्डमपो निधाय मेखलां यज्ञोपवीतं चाप्स्वन्तरि तिप्रत्यृचंनमोवरुणायेति त्रिमधुरंदत्त्वा ततोऽस्याग्नेयं प्रथमं वेदव्रतमादिशेद्ब्राह्म णक्षत्त्रियविशांपंचसांवत्सरिकाणि वेदव्र तानिभवंत्याग्नेयꣳशुक्रियादिषुशुक्रिय ꣳशुक्राभिःश्रावयेदौपनिषदमौपनिषद्भिः शौलभꣳशौलभिनीभिरथवा विद्यमान ऽआब्रह्मन्नुमुदीरतामानोभद्राऽआशुः शि शानऽइमानुकमितिच वेदशिरसावगुंठ येवगुंठनीं च गोदाने गोमिथुनंतस्माद्गोदा नमिति॥७॥वेदꣳसमाप्यस्नायाद्ब्रह्मचर्यं वाष्टाचत्वारिꣳशकंद्वादशकेप्येके गुरुणा नुज्ञातोविधिर्विधेयश्चतर्कः षडंगमेकेन कल्पमात्रकामं तु याज्ञिकस्योपसंगृह्य गुरुꣳ समिधोभ्याधायपरिश्रितस्योत्त रतः कुशेषु प्रागग्रेषुपुरस्तात्स्थित्वाऽ ष्टानामुदकुंभानां येप्स्वंतरग्नयः प्रविष्टा

रोवेष्टयतेयुवासुवासा इत्यलंकरणमसिभू
योलंकरणं भूयादिति कर्णवेष्टकौ वृत्रस्ये
त्यङ्क्षिणी रोचिष्णुरसीत्यात्मानमा
दर्शे प्रेक्षते छत्रं प्रतिगृह्णाति बृहस्पते
छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो
यशसोमामन्तर्धेहीति प्रतिष्ठेस्थो विश्व-
तो मापातमित्युपानहौ प्रतिमुञ्चते वि-
श्वाभ्यो मानाष्टाभ्यः संपरिपाहि सर्वत
इति वैणवंदण्डमादत्ते दंतप्रक्षालनादीनि
नित्यमपि वासच्छत्रोपानहश्चापूर्वाणि
चेन्मंत्रः ॥ ८ ॥ स्नातस्य यमान्वक्ष्यामः
कामादितरो नृत्यगीतवादित्राणि नकु
र्यान्नच गच्छेत्कामंतुगीतंगायति वैगी
ते वारमत इति श्रुतेर्ह्यपरं क्षेमे नक्तं ग्रा-
मान्तरं नगच्छेन्नच धावेदुदपानावेक्षण
वृक्षारोहणफलप्रपतनसंधिसर्पणविवृ-

भिक्षेतापह वैस्नात्वाभिक्षां
वर्षत्यपावृतो व्रजेदयंमेवत्रः
मपहनदित्यप्स्वात्मानं
लोम्नीं विपुष्ठंसीष्ठंषंडंचनोपहसेत्
गच्छेद्गर्भिणीं
मितिनकुलंभगालमितिकपालं मणि
नुरितींद्रधनुर्गांधयन्तीम्परस्मै न
तोर्वरायामनंतर्हितायां
न्नमूत्रपुरीषेकुर्यात्स्वयंप्रशीर्णेन काष्ठेनगु
दंप्रमृजीतविकृतंवासोनाच्छादयीत
व्रतोवधत्रः स्यात्सर्वतऽआत्मानंगोपायै
त्सर्वेषांमित्रमिवशुक्रियमध्येष्यमाणः॥९
तिस्त्रोरात्रीर्व्रतं चरेदमांष्ठं साश्यमृन्मय
पायीस्त्रीशूद्रशवकृष्णशकुनिशुनां चाद
र्शनमसम्भापणं चतैश्शवशूद्रसूतिकान्ना
निचनाद्यान्मूत्रपुरीषेष्ठीवनं चातपेनकु-
र्यात्सूर्याचात्मानं नांतर्दधीततप्तेनोदका
र्थान्कुर्वीतावज्योत्यरात्रौभोजनष्ठसत्यव
चनमेववादीक्षितोप्यातपादीनिकुर्यात्प्रव

भितेन॥ श्रीविष्णुदत्तेन सुदर्शनेन कृताहि टीका
जतांजने॥६॥ नत्वागुरुं शास्त्रनिविष्टनेत्रं
वावभूतम् ॥ अभूतपूर्वश्च हि सम्प्रभूतं
किलशास्त्रिवर्यम् ॥ ७ ॥ काश्युद्भवं
विद्यासमूहस्यतुमुख्यमोकः ॥ यस्मादधीतं
सर्ववेदं गोपालशास्त्रिस्वगुरुंप्रणौमि ॥ ८ ॥
महात्मानं शास्त्रिणं प्रणमाम्यहम् ॥ यस्य
रसमालब्धं ज्ञानं विज्ञानमेवच ९ ॥
साधुरामश्च विष्णुदासं तथैवच।
नोऽन्यान्नमस्कृत्य पुनःपुनः॥ १० ॥
रम्ये वसुवेदांकभूमिते(१९४८) ॥ वैक्रमे माधवे
कृता टीका मनोरमा ॥ ११ ॥

(श्रीहरिः परमेश्वरो विजयतेतराम्)

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस